

जीवन-साहित्य

[साहित्य संस्कृति एवं धार्मिक ग्रंथों के सम्बन्ध में ग्रेक विचार]

१. कथा कासेसकर



१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक

मार्शलब्ड उपाध्याय,

मन्त्री सस्ता साहित्य मंडल

मई दिल्ली ।

तीसरी बार १९५२

मूल्य

वा रुपये ३०००००

मुद्रक
सुरेन्द्र प्रिन्टर्स लि०
दिल्ली ।

प्रकाशकीय

इस पुस्तक के विद्वान लेखक हमारे देश के इने गिने वितर्कों में से हैं। वह दीर्घकाल तक गांधीजी के साथ रहे हैं और उनकी विचार धारा का उन्होंने बड़ी गहराई से अध्ययन किया है। अपने स्वतंत्र चिंतन से उन्होंने जीवन के प्रति एक नया और स्वस्थ दृष्टिकोण बनाया है। उनके लिए जीवन सर्वोपरि है—वह जीवन जिसे ओकर व्यक्ति घम्यता का अनुभव करता है। उनकी दृष्टि में हमारा साहित्य हमारी संस्कृति तथा अन्य सभी चीजें उसी जीवन की साधना से उत्प्रापित होनी चाहिए।

इस पुस्तक के लेखों में काकासाहब ने जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है और बहुत ही विचार-पूर्ण सामग्री पाठकों को प्रदान की है।

काकासाहब की लेखन-शैली का तो कहना ही क्या है। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो हम कविता पढ़ रहे हैं। भाव और भाषा का यह सौन्दर्य उनकी रचना को बहुत ही आकर्षक और प्रभावशाली बना देता है।

हमें हर्ष है कि पुस्तक का यह तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है पाठक इसे भाव से चढ़ेंगे और दूसरों को भी पढ़ने की प्रेरणा देंगे।

मूस लेख गुजराती में लिखे गए हैं और उनका अनुवाद श्री श्रीपाद जोशी ने किया है।

—मन्त्री

विषय-सूची

जीवन-साहित्य

१	पुराने ज़ेतोंमें नबी जुताबी	७
२	साहित्य-सेवा	८
३	साहित्योपासना	१६
४	साहित्यकी आजकी ज़ेक कसौटी	२२
५	बाह्यी साहित्यकार	२४
६	सौन्दर्यका मर्म	२७
७	प्राचीन साहित्य	२६
८	पत्रकारकी बीछा	३७
९	जीवनविकासी सगठन	४६
१०	रस-समीक्षा	५६
११	मेरे साहित्यिक संस्कार	७२

जीवन-संस्कृति

१	संस्कृतिका विस्तार	८२
२	जीवन षक्र	८७
३	सुधारोंका मूल	६१
४	सुधारकी सच्ची विद्या	६४
५	सयममें संस्कृति	६६
६	पंच महापातक	१००
७	पुन और पसीमा	१०२
८	अशियाकी साधना	१०४
९	वीर-धर्म	१०६
१०	दो वर्ग	११३
११	प्रतिष्ठाकी अस्पृश्यता	११७

१२	अन्त्यज-सेवा	११८
१३	मजदूरोंका धर्म	१२२
१४	अमजोषी वनाम बुद्धिजीवी	१२६
१५	धर्म-संस्करण	१२६

जीवित अतिहास

१	जीवित अतिहास	१३४
२	घारदाका अुद्बोधन	१३६
३	जम्माष्टमीका अुत्सव	१३६
४	नवरात्रि	१४६
५	विजयादशमी	१४७
६	वीवाली	१५६
७	वसन्त पंचमी	१६३
८	हरिणोंका स्मरण	१६५
९	गुलामोंका त्योहार	१६६

जीवन-साहित्य

१

पुराने सैतमें नयी सुताभी

ऐक घूड़े आदमीने अपनी मृत्युके समय अपने लड़कोंसे कहा कि मुझे सैतमें कुछ गहराभीपर बन गया हुआ है। लड़कोंने सारा सैत खोज बांटा मगर वह धन न मिला। लेकिन उस साल फसल अतिनी अच्छी आयी कि मुझे सामने गया हुआ माल मिलता तो भी वह नगण्य मालूम होता। गहरी जोताबीका फल मिला गया।

सामान्य लोग विचारक्षेत्रमें जबतक ऊपर-ऊपरसे ही हल चलते हैं तबतक सामाजिक जीवन प्राकृत और सीम रहता है। जब-जब 'धीरे' लोगोंने अन्तर्गत के लड़कोंकी तरह खूब गहराभी तक खादा है तब-तब विचारकी अपूर्व फसल आयी है। श्रीकृष्णने ऐकबार ऐसा ही किया था, मुसीने भारतीय विचारसागरमें अतिना खार आयी। बुद्ध भगवानने ऐसा बोमी भी प्रमाण मान लेने से अिन्कार किया जो आरामप्रतीतिसे भिन्न हा, जिसके परिणामस्वरूप आर्य संस्कृतिकी ज्ञानाम्निपर जमी हुई राख बुझ गयी और आर्यविचार राशि जगमगा मुठी। फ्रांसके डिडेरो और दूसरे बिद्वकोप-लेखकोंने विचारक्षेत्रको लोदसादकर यह देण किया कि मनुष्य-समाज कौनकौनसे तर्कोंपर आधारित है और तब युरोप में कान्ति होकर आम-जग स्वतन्त्र हो गया। मार्टिन लूथरने अपने समयकी धर्म-व्यवस्थाको आग में झोंक दिया जिससे समाजधर्मकी गंदगी साफ होकर स्वाभाविकता

प्रतिष्ठित हो गयी। जिस तरह जब मनुष्य अधपरंपराको फेंक देकर छोटे-मोट हरेक पवार्ष से 'कोप्रिस ? तस्मिस्त्वयि कि वीर्यम् ?' ऐसा मवाल पूछनेकी हिम्मत करता है तब धर्म-संस्करण होता है, जततामें नया ऋतु आ जाता है। विद्वानों को नयी दृष्टि प्राप्त होती है और जिस दृष्टिका असर चौदह विद्याओं और चौसठ कलाओंपर पड़ता है।

आज हिन्दुस्तानमें जिसी तरहकी उत्खननशास्त्र धर्मजागृति और कर्म-विचिकित्सा जाग अठी है। प्रत्येक वस्तुका रहस्य हम खोजते हैं जीवनका परम रहस्य नये सिरस ज्ञान लते हैं और जुमे आचरण में झाना चाहते हैं नयी समाजव्यवस्था और नयी आचारविधियों द्वारा हम उसे समाजमें दालिल कराना चाहते हैं और यह नया प्राण लेकर हम विचारकी दुनियापर शुद्ध व सार्विक दिव्यजय प्राप्त करना चाहते हैं।

आज कप्प और शंकराचार्य बुद्ध और महावीर चैतन्य और नानक मेसाया और महादी सभी मये-नये अवतार लेने वाले हैं नये स्वरूप धारण करनेवाले हैं। शायद वे अकेलप भी होंगे शायद अके ही व्यक्ति अनेक रूप धारण करेगा क्योंकि हम विचार-सागरको आन्वेषित करनेकी हिम्मत और कोशिश कर रहे हैं।

२

साहित्यसेवा

मैं साहित्यसेवी नहीं हूँ साहित्योपासक भी नहीं हूँ। हाँ साहित्यप्रमी जरूर हूँ। मैंने साहित्यका आस्वाद्य लिया है। मुझका असर मुझपर हुआ है। मैंने देखा है कि अस्वल्प साहित्य बुद्धिको प्रगल्भ बनाता है भावोंको सूक्ष्म बनाता है अनुभवको अनुकर विदाद करता है धर्मबुद्धिको जागृत करता है हृदयकी बेदनाको व्यक्त और भावस्वी बनाता है सहानुभूतिकी बुद्धि करता है और आनन्दको स्थायी बनाता है। जिस बजहसे

साहित्यके प्रति मेरे मनमें आदर है। लेकिन मैंने अपनी निष्ठा साहित्यको समर्पित नहीं की है। साहित्यको मैं अपना अष्ट देवता नहीं मानता। साहित्यको मैं साधनके तौरपर ही स्वीकार करता हूँ और वह साधनके तौरपर ही रहे अर्थात्—अगर आप मुझे भाग्य करें तो कहूँ कि—मैं चाहता भी हूँ। गोस्वामी तुलसीदासजीके मनमें हनुमानजीके प्रति आदर था लेकिन उनकी निष्ठा तो श्रीरामचन्द्रजीके प्रति ही थी। इसी तरह मैं चाहता हूँ कि हमारी अुपासना जीवनकी हो हो। साहित्य तो जीवनरूपी प्रभुकी सेवा करनेवासे अनयनिष्ठ भक्तके स्नानपर ही घोभा देता है। वह जब अपनी ही अुपासना शुरू करता है तब वह अपना धर्म भूल जाता है। मनुष्य अगर अपने ही सुखका विचार करे, अपनी ही सहस्रियतोंकी सोजके पीछे अपनी बुद्धि खर्च कर डाले और अपने ही आनन्दमें स्वयं मग्न हो जाय तो जिस तरह भुसका जीवनविकास अटक जाता है और भुसमें विकृति पैदा होती है उसी तरह साहित्यके बारे में भी होता है। जब 'केवल साहित्यके लिये साहित्य' का निर्माण होता है, यानी लोग जब साहित्यकी केवल साहित्यके तौरपर ही अुपासना करते हैं तब शुरूमें तो यह सब भूबसूरत दिखायी देता है। विशेष आकर्षक लगता है, जबतक भुसकी पूर्व-मुष्कामी खत्म न हो जबतक अर्थात् भी महसूस होता है कि भुसका बहुत विकास हो रहा है लेकिन अदरसे वह निश्चय होता जाता है। साहित्यको भुसका पोषण साहित्यमेंसे नहीं बल्कि जीवनमेंसे मनुष्यक पुरुषार्थमेंसे मिलना चाहिये। साहित्यमेंसे ही पोषण प्राप्त करने वाला साहित्य इन्जिन है वह हमें आगे नहीं ले जा सकता।

अब तरहके कुछ-कुछ संकुचित भाग विचार में रखता हूँ। इसलिये 'केवल साहित्य' के अुपासकों से मैं डरता हूँ। भुसका दबता असंग है मेरा देवता असंग। लेकिन साहित्योपासक बहुत अुदार होते हैं। हालाँकि मैं साहित्योपासक नहीं हूँ फिर भी वह भिन्न न जाना। १९४७ में कि

ही क्यों न हो लेकिन मैं साहित्यका यजन करता हूँ और मैं 'मदयान्वित' हूँ। अतः साहित्यके विषयमें अपने कुछ विचार प्रकट करने की घुट्टता कर रहा हूँ।

मनुष्यके विचार, अस्वकी कल्पनाओं भावनाओं भावुकताओं अथवा भावुकताप्रधान अनुभव दूसरों के सामने परिणामकारक तरीकेसे व्यक्त करनेकी शक्ति जिस वस्तुमें है वह साहित्य है— यह मेरी अपनी साहित्यकी परिभाषा है। मुझे मासूम है कि तार्किक लोग अंक क्षणमें अस्वको छिन्नभिन्न कर सकते हैं लेकिन अपूर्ण मनुष्यकी बनायी हुयी परिभाषाओं अगर अपूर्ण हों तो उसमें आश्चर्य क्या? जिसमें भावोंपर अनायास प्रभाव डालने की शक्ति है वह साहित्य है। सांसारिकता यानी क्षुत्पन साहित्यका प्रधान गुण है।

यह प्रभाव अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। भावनाओं मनुष्य-जीवनका लगभग सबस्व होनेकी वजहसे अतः पर जिस वस्तुका प्रभाव पड़ता है अस्व वस्तुकी तरफसे स्तब्धता रहनेसे काम नहीं चलता। हवा पानी आहार वगैरा शुद्ध रखनेका आग्रह जिस तरह हम रखते हैं या हमें रखना चाहिये असी तरह बल्कि उससे भी ज्यादा आग्रह हमें साहित्यकी शुद्धि के सम्बन्धमें रखना चाहिये। शीलकी तरह साहित्यकी रक्षा जहाँ की जाती है वहाँ जीवन पवित्र प्रसन्न और पुरुषार्थी होगा ही। मुञ्चारेण शुद्धि हिज्जोंकी शुद्धि व्याकरणकी शुद्धि आदि प्राथमिक बातोंसे लेकर साहित्य के प्रत्येक अंग प्रत्यगम शुद्धि का आग्रह होना चाहिये। लेकिन अस्वमें कृत्रिमता न आवे बाह्याङ्कुर न आवे दम न आवे कर्मकांड न आवे।

निष्पत्ति मुग्धता शुद्धि का एक पहलू है और संस्कारिता दूसरा पहलू। दोनों तरहसे शुद्धि की रक्षा की जाती है। लेकिन अगर हम सिविलिज़ताके ही हमी बन जायें और हर तरहकी विकृति को भी नजरवाज करनेको तैयार हो जायें अगर सामाजिक जीवनमें सदाचारका और साहित्यमें शुद्धि का धोका

भी आपस रहनेका जो कोई प्रयत्न करेगा उसने खिलाफ आवाज बुलन्द करने उसे चुप करानेकी कोशिश करें तो उससे समाज का बेहद मुन्सान होने वाला है। सामाजिक जीवनमें हो या साहित्यमें दुष्ट रहनेकी जिम्मेदारी विदिष्ट खेप्ट वर्गका ही होती है। पुलिस या अदालतके जरिये सामाजिक सदाचारका सर्वोच्च आदर्श नहीं टिक सकता। साहित्यकी भी यही हानत है। समाजके स्वाभाविक अंगुष्ठा जब थिपिल हो जाते हैं करपोक बन जाते हैं अथवा खुदासीन हो जाते हैं तब समाजको सभानेवाली कोश्री भी शक्ति नहीं रहती।

साहित्यकी प्रवृत्ति हमेशा समाजसेवाके लिये ही हाती हो सो बात नहीं। मानसिक आनन्द सन्तोष, सुझलाहट या व्यथा को प्रकट करनेकी दृष्ट्यवष्ट करनेकी या सहजप्रवृत्ति मनुष्यमें है उसमेंसे साहित्यका अद्गम होता है। संगीतकी तरह साहित्य का आनन्द भी मनुष्य अकेले-अकेले स्रब्रता है फिर भी तमाम वाग्ब्यापार सामाजिक जीवनके लिये ही है। साहित्यकी प्रवृत्ति प्रधानतया अपने भावप्रधान मनन अथवा अद्गारों को दूसरेमें सञ्चरन्त करनेकी विच्छासे हुमा करती है। जिसलिये यह कहा जा सकता है कि साहित्य प्रधानतया सामाजिक वस्तु है। जीवनकी सभी अच्छी चीजाकी तरह सच्चा साहित्य आत्मनैपदी भी होता है और परस्मैपदी भी। मनुष्यके सर्वोच्च सद्गुण उसने सामाजिक जीवनमेंसे पैदा होते हैं। और तो और अनन्यनिरपेक्ष मोदोच्छा भी सर्वोके साथ आत्मौपम्य अनुभव करनेके लिये ही है यानी उसका प्रारंभ और अन्त सामाजिक जीवनकी कुसामंताके साथ ही है। साहित्यक यारेमें भी ऐसा ही कहा जा सकता है। जिस तरह गायनक साथ तंबूरेकी आवाज छान सिमा ही करती है उस तरह साहित्यक तमाम विस्तारमें अनहितका छोक-बस्त्याणका मुर नायम रहना ही चाहिये। जो कुछ जिससे विसंवादी हागा वह संगीत नहीं बल्कि मासिक कोलाहल है। वह साहित्य नहीं बल्कि, मानसिक जहर

अकेदार हिन्दुस्तानके ऐतिहासिक पुरुषोंकी सूचीमें मैने श्रीमद्भगवद्गीता का नाम भी जोड़ दिया था। 'जिसके व्यक्ति त्थकी छाप समाजपर अलग-अलग समयपर अलग-अलग ढंगसे पड़ती है और जिसलिये जिसके चिरजीवीपनका अनुभव हमेशा होता रहता है वह है व्यक्ति अथवा पुरुष' ऐसी परिभाषा की जाय तो हम यह मान सकते हैं कि भगवद्गीताको राष्ट्रपुरुष कहनेमें औचित्यका कोई भंग नहीं है। साहित्यके बारेमें भी यही बात है। अथवा अन्य प्रकारसे सामर्थ्य प्रकट करनेवाले व्यक्तिका हृदयसर्वस्व होनेके कारण व्यक्तिके प्रभावकी तरह उस व्यक्तिके साहित्यका भी प्रभाव हुआ करता है। प्रभु, मित्र या कान्ताके साथ साहित्यकी तुलना करनेवाले साहित्याचार्योंने यही बात दूसरे ढंगसे कही है। 'प्रभु' की जगह आज हम 'गुरु' शब्दको अधिक पसन्द करते हैं। गुरु मित्र और जीवनसहचरी तीनों सम्बन्ध पवित्र हैं अर्थात् हैं। साहित्यकर विरुद्ध ऐसा ही होना चाहिये। सामाजिक व्यवहारमें हम चाहे जिस आदमी को घर्मे घुसने नहीं देते। जोर, धाठ पिशुन या भुजंगकी ओंछीके लोगोंको हम बेहसीजक अन्दर पैर नहीं रखने देते। साहित्यके ऊपर भी हमारी ऐसी ही चौकी होनी चाहिये। अप वित्र मनुष्य चाहे जिसना छिप्टाचारी क्या न हो उसे जिस तरह हम अपने बालवर्षोंके साथ वगैर किसी रोकटोकके बिना जूझने नहीं देते उसी तरह पापाचरणको भुक्तजन देनेवाले साहित्यको भी हमें अपने घर में घुसने नहीं देना चाहिये। घरसे बाहरके व्यवहारोंमें जहाँ सभी क्रिस्मके लोगोंके साथ सम्बन्ध आता है वहाँ अच्छी और खराब बातोंको परखनेकी कला जिस तरह हम अपने बालकाको प्रदान करते हैं और प्यावती करने वाले मनुष्योंको दूर रखनेकी सिखाते हैं उसी तरह साहित्यमें भी दुष्ट साहित्यके हाजमावोंमें न फँसकर उसे दूर रखनेकी कला हमें अपने बालकोंको सिखानी चाहिये।

लेखन में जानता हूँ कि आजकी हवा जिस तरहकी नहीं है।

शिष्टाचारकी पुरानी बाड़ें तोड़नेका ही प्रयत्न हमने शुरू किया है। मनुके स्थानपर नये आदर्शकी नयी मर्यादाओं तैयार करनेकी बात हमें नहीं सूझी है। कृत्रिम या भौतिक बातोंकी हिमायत में भी नहीं करता। लेकिन समाज-हृदयमें कुछ-म-कुछ आदर्श का होना ही चाहिये और मनु आदर्श की रक्षा करनेका साधन रखनेवाले समाजघुरीण भी चाहियें। व अगर अपना यह स्वभावसिद्ध कुलद्रव छाड़ दें तो संस्कृतिकैस टिक सकेगी? संस्कृति तो अँगीठीकी आगकी तरह जबतक हवा चलती है तभीतक टिकनेवासी चीज है। पुरुषार्थ और जागृतिकी बोलीके बिना एक भी संस्कृति नहीं बची है। संस्कृतिका प्रकृतिके ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता। लेकिन आज तो ऐसा लगता है कि मानो हम सामाजिक अराजकता ही पसन्द करते हैं। यह तो साफ जाहिर है कि पुरानी व्यवस्था अब नहीं टिक सकती न टिकनी भी चाहिये। लेकिन पुरानेकी जगह नयी व्यवस्था रचनेके लिये आवश्यक प्राणवल हमारे समाजमें होना चाहिये। कानूनके अकुलकी बात में नहीं करता। मैं तो ऐसा ही मानता हूँ कि साहित्यपर कानूनका अकुल कमसे कम होना चाहिये। सदाचार की सर्वोच्च कोटिका विचार करके कानून नहीं चलता। कानून की आँखें स्पूल होती हैं जड़ होती हैं और अमक अपाय असंकारी होते हैं। साहित्यपर अकुल होना चाहिये लोकमतका। लोकमतका के मानी हैं स्मकारी खुदर, चारिष्यवत्सल समाज घुरीपोंका। ऐसा कुछ करनेके लिये आजका समाज तैयार नहीं है यह मुझ मालूम न हो सो घास नहीं। लेकिन यह कहना हो पड़गा कि जिससे समाज अपना ही मुकसान कर लेता है। 'नैको मुनिर्यम्य बध प्रमाणम्' जिस दलील की आड़ में हम सारी मर्यादाओंका छद्म भुड़ाना तो नहीं चाहत ?

साहित्य है कलाका ही एक विभाग। जिसलिये कलाके नियम मिसपर भी लागू किय जात हैं। कलाके लिये ही कला है कला कभी भी किसी बाह्य बस्तुके अकुलको स्वीकार नहीं करेगी—असा

कहनेवाले केवल-कसाबादी लोग नीतिके अकथका हमेशा मजाक उड़ाते आये हैं। 'स्वात्मनि अथ समाप्य महिमा' जिस तरह की महकला देखते-देखते निरर्गल स्वार्थी बन जाती है। और स्वार्थ के साथ सत्य कथ टिका है ? कला कलाक लिये (Art for Art's sake) की परिणति कला कलाकारके लिये (Art for the Artist's sake) में हो जाती है।

मेरा यह आप्रह नही है कि कलाको नीतिका अंगुष्ठ स्वीकारना ही चाहिये। लेकिन जिसका कारण अलग है। साहित्यके ग्रास उसका अपना गांभीर्य अपनी प्रसन्नता और पवित्रता क्यों न हो ? हास्य-विमोह जिस तीनोंका विरोधी तो नही है। अतना ही नहीं बल्कि वह जिन तीनोंको अंगुष्ठ कोटिको पहुँचाकर दिखाता है। अगर साहित्य स्वधर्मका पालन करे तो उस नीतिका अंगुष्ठ नीकारना न पड़ेगा। साहित्य जब हीन अभिरुचिके या कला उन्मूलन के लिये पुरखानेमें जा पड़ता है तब नीतिका लाचार होकर उसे वहाँसे उठाकर घर माना पड़ता है। स्वराज्यमें या पुराज्यमें सदाचारी और स्वयंसाक्षित नागरिकोंको नगर रक्षकोंसे डरनेका कोई कारण नही रहता।

लेकिन कला और साहित्य अंक ही वस्तु नही है। सुन्दरता साहित्यका मूल्य है न कि सर्वस्व। साहित्यका सर्वस्व साहित्यका प्राण अोजन्विता है बिज्जमसीलता है सत्यवृद्धि है। जीवनके विविध क्षेत्रोंमें पौरुषकी वृद्धि करनेमें ही साहित्यकी मुक्ति रही है।

क्या विषय-सेवन समाजमें अतना क्षीण हो गया है कि कलास प्रेरक साहित्यके द्वारा उसे असेजम देनेकी आवश्यकता उत्पन्न हुमी है ? समाजकी तरह साहित्यको भी देहधारीक तयमोंके वश होकर अंगुष्ठ-नीच स्थितियाँ भुगतनी पड़ती हैं। जब समाजका सम्पूर्ण अर्क्य हो चुका हो उसके कारण आनेवाली मृद्धि धक गई हो तब भले ही समाज विभासितामें डूबकर सर्वस्व खोनेको तैयार हो जाय; लेकिन जब पतित समाज

मानवजातिपर आनेवाली सभी आपत्तियोंका दुर्बो सग्रहस्थान बन गया हो करोड़ों लोग भूखसे या मिराघासे तड़पते हों, पुरुषार्थका जहाँ-तहाँ धाटा ही दिलायी देता हो और बरसातके दिनोंकी कासी रातकी तरह बारों ओर अज्ञान फैला हुआ हो ऐसे बस्तुपर तो हृदयकी दुर्बलता बढ़ानेवाला, नामर्द वासनाओं को खूबसूरत करके दिलानेवाला और अनेक हीन वृत्तियोंका बचाव या तरफ़्तारी करनेवाला हत्यारा साहित्य हम पैदा न करें। पढ़नेसे पहले ही पढ़नेकी तैयारी कैसी ?

सिंहासनवत्सीसी और बेतारूपपञ्चीसीके वातावरणसे हम अभी कहीं बाहर निकले हैं तो फिर उसी वातावरणका सुभरा हुआ और आकर्षणपूर्ण संस्करण निकालकर क्या हम बढ़ सकते हैं ? गुणका कलेबुर भले ही सुन्दर हो उसकी पोशाक भले ही प्रतिष्ठित हो अतने भरसे वह कम धातक साबित नहीं होता बल्कि वह ज्यादा खतरनाक हो जाता है।

अपनी समाज-व्यवस्थाकी सुन्दरताका हम जाहे जितना वस्त्रान करें, मगर अन्तमें आज एक त्रुटि स्पष्ट दिखायी देती है। मेक जमाना था जब हम सब संस्कृतमें ही लिखते थे। जिससिन्धु हमारे प्रौढ़ और ललित विचार सामान्य समाजके सिन्धे दुप्याप्य थे। लेकिन अन्त बन्ध सत-बन्ध और कथा-कीर्तन कार वह सारा कीमती मास अपनी शक्तिके अनुसार स्वभाषाकी फुटकर टुकानोंमें सस्त दाम बेचते थे। मुगल-जालमें अर्दूकी प्रतिष्ठा बढ़ी और अरबी फारसी भाषाओंसे कविमाका प्रेरणा मिलने लगी। अंग्रेजी जमाना शुरू हुआ और अपनी सारी भाषिक खुराक अंग्रेजीसे लेनेकी हमें आवश्यक पड़ गयी। अन्त अन्त और बुरा धानों तरहका अन्त हमारी मनोरचनापर पड़ा है साहित्यपर ठा पड़ा हो है। आजकलके हमारे अन्तार और भाषिकपत्रिकाओं नये जमानेके विचार फुटकर भावसे बेचनेका काम करने लगे हैं। लेकिन अन्त तीनों वर्गोंमें गरीब श्रेणीके लोगोंके सिन्धे देहातिमों और मजदूरोंके सिन्धे स्त्रियों और बालकों

के सिन्धे विशेष प्रयास नहीं हुआ है अक्षिप्त समाजमें भी
 उनका सामाजिक प्राण बहुत कुछ साहित्यका निर्माण करता
 है। हमारे संस्कारी दशमें साधुसन्तोंकी कृपासे मुसमें कुछ बढ़ि
 हुआ हो तो उससे आश्चर्यान्वित होनेका कोई कारण नहीं।
 लेकिन ज्यादातर मध्यम श्रेणीका ही विचार हम हमेशा करते
 आये है। हम यह भूल गये हैं कि गरीब लोगोंका जीवन सन्तोष
 मय आशामय और संस्कारमय करना हमारा धार्मिक कर्तव्य
 है। कुछ अनीतिनी कहानियोंको छोड़ दें तो हमारी कहानियों
 और उपन्यासोंमें गरीबके कष्ट काव्यमय जीवनका विचार
 भी नहीं होता। पुराणकारोंने जिस तरह अमृत अप्सरा और
 औषधसे भरे हुए स्वर्गकी कल्पना की उस तरह आदिकल्पने
 उपन्यासकार ऐसेही किसी बेकार आदमीकी कल्पना करते हैं
 जो बकील-बैरिस्टर हुआ हो जिसने विलायतका सफर किया हो
 या बसीयतनामेसे जिसका जब पैसा मिला हो और उसके
 'आत्मनि संतुष्ट' निरर्थक जीवनका सविस्तार वर्णन करते हैं।
 जातिभेद हमारे मनोरथोंमें भी अितना भरा हुआ है कि मध्य
 श्रेणीके बाहरकी दुनियाको हम नहीं देख सकते। बिल्कुल गरीब
 लोगका जीवन हमें दयापात्र किन्तु रहस्यसून्य लगता है।
 जिसके उस बारहसींगेकी तरह हम सिरपरक सींगोंके गरूरमें
 अपने पतले पैरोंका तिरस्कार करने लगे हैं या तिरस्कार करने
 जितना भी ध्यान हम उनकी तरफ नहीं देते। कर्म और पुन
 जन्मके सिद्धान्तका आशय लेकर हम अपने अनाथब्रह्मका ढँक
 केते हैं अनाथोंकी सेवा तो दूर रही उनका स्मरण तक हम
 नहीं करते। अंग्रेजी कवि हूडके 'कमीजका गीत' (Song of
 the Shirt) की बराबरी कर सके जैसा मौलिक काव्य क्या
 किसीने लिखा है? जिसके उस बारहसींगेकी ओ हास्य
 अन्तमें हुआ वही हास्य हमारी हमेशा हाथी आयी है। और अब
 तो बिनासकी घटाओं सिरपर मढ़ा रही हैं। हमारा लोकप्रिय
 साहित्य हमारी सामाजिक स्थितिका सूचक है। जो कुछ

दिक्में होगा वही हाँठोंपर आयेगा न ? गरीबोंकी मददके लिये कौन कौनसी है, उनके दर्द-दुःख क्या है, उनमें सवाल कितने पेचीदा और विद्याल है और सब बातों पर जिम्मेदारीके साथ विचार करके जसली सवाल हल कर सके ऐसी योजना जल्द होगी सभी गरीबोंके दिलोंमें कुछ आशा पैदा होगी न ? जिसकी हम बैरन चुराते हैं उसीको अगर दानमें छोटीसी सूची देते हों तो उसे सेते समय सेनेवालेके दिलमें कैसी भावना उत्पन्न होगी ? हमारा साहित्य अगर हमें अपना युगधर्म न बताये और उस धर्मका पालन करनेकी प्रेरणा हमें न दे तो वह अन्य सब प्रकारसे सरस होते हमें भी उसे विफल ही कहना चाहिये ।

गरीबोंको बाहर रखनेके लिये जिस तरह हम विवाद वन्द करके साना साते हैं और पंक्तिमेद का प्रपंच रखते हैं उसी तरह हमने साहित्यकी विधिष्ट कठिन शैलियोंको अपनाकर ज्ञानकी प्याज में जातिमेव पैदा किया है । मुवात मुल्लत विचार आम जनताको जिस आसानीसे मिलने चाहिये वह नहीं मिल सकते । हमारे सामुसन्ताने गरीबी का घत से लिया था जिसी लिये वे गरीबोंकी सेवा कर सके और गरीबोंके लिये प्राणपूर्ण साहित्य लिख सके । हिन्दुस्तानकी सबसे बड़ी ताकत उसकी जन-संख्या है । लेकिन हमने गरीबोंका बोह करके जिसी बलको भारम्प बना दिया है । जबतक हम गरीबोंके लिये साहित्य न लिखेंगे, हजारों की ताबाद में बाहर निकलकर गरीबोंको हमारा भित्तिहास और आजकी हमारी स्थिति हमारा काव्य और हमारा धर्म तथा उसकी सुविद्यान समाजाओंगे अपने जीवनपर अभी हमी रात हटाकर उसे प्रदीप्त करने की प्रेरणा न देंगे तब तक हमारा साहित्य पाइरोगी ही रहेगा ।

साहित्यकी भूमितिक लिये तैयार होनेवाली योजनाओंमें नौप और सन्धर्मप्रप, भित्तिहास और विवेचन, पाठ्यपुस्तकें और प्रमाणग्रन्थ, परिपदे और समितियाँ—सबसे बृहत् बातें होती हैं । बहुसय छोड़कर साहित्यके मुद्दारेके लिये गरीब जनताकी

सेवा करनेकी सूचना में कर रहा हूँ यह बख्तर कुछ लोगोंको भसा सगेगा कि मैं साहित्य-मंडलको समाजसुधार-परिपक्व समझनेकी भूल करके धातें कर रहा हूँ। मूलपर भिन्नता भले ही लगाया जाय लेकिन मैं तो निश्चित रूपसे यह मानता हूँ कि पेड़को जिस तरह प्रधानतया जमीनमेंसे ही पोषण मिलता है उस तरह साहित्यका पोषण समाजमें ही है। मानवता और धर्मनिष्ठतामें ही हमारा साहित्य समुद्र होनेवाला है जिसमें मुझे तनिक भी शक नहीं है।

अुत्तिष्ठत आजकलकी योजनाओंको मैं नीचा दिखाना नहीं चाहता। इनमें यथा-शक्ति भाग भी लेना चाहता हूँ। लेकिन असली बातको भूल जानेसे काम न चलेगा।

जहाँ पुरुषार्थकी कमी हो जाती है और जीवनमें सिधिलता आ जाती है वहाँ साहित्यके बारेमें अल्पसन्तोष और रसिकताका सिद्धांतन स्वाभाविक रूपसे आ जाता है। आज हम महाकाव्य नहीं लिख सकते हमारी प्रतिभा चौदह पक्तियाँ किसी तरह पूरी करनेसे पहले ही सूख जाती है—जिस तरहकी आलोचना मैं नहीं करना चाहता। काव्यकी सम्बाधी-बौद्धाभीपर मैं अधिक जोर देना नहीं चाहता। लेकिन हमारे काव्यविषय अत्यंत खपवा गमीर नहीं हुआ करते हमारे काव्यविवेचन सर्वकथ और अुत्कट नहीं हुआ करते वैसे आलोचना मैं जरूर करूंगा।

साहित्य तो ज्यादातर व्यक्तिगत प्रयास ही है। जबतक वह गंभीर और दीर्घ भुत्तोगके परिणामरूप न होगा तबतक सिद्धता ही रहेगा। अीश्वरने असाधारण प्रतिभा प्रधान की हो तो भी वह शक्तिधीजबप ही होगी। मनुष्यको कमसे कम मालीका काम तो अीमानदारीके साथ करना ही चाहिये। साहित्यमें सहयोग के साथ काम किये बिना भी न चलेगा। सहयोगके सिधे जो सधुण आवश्यक हैं अुम्हें अपनेमें लाये बिना अब एक कदम भी आगे बढ़ना मुश्किल है। सिद्धान्तका आग्रह स्वभाव भेदको नजरअन्दाज करनेकी शक्ति, उपत्तीलमें अुतरनेकी कुशलता

और मेक ही सकल्पसे सम्भे अरसे तक चिपके रहनेकी दृढ़ता—
बिन सामाजिक सद्गुणोंका विकास अगर हम न करेंगे तो
हमारे हाथों कुछ बिसेप साहित्यसेवा हो ही न सकेगी ।

यह तो हुयी साहित्यकी सेवा । किन्तु सच्चे साहित्यका
निर्माण तो जनताके पुरुषार्थका ही फल है । 'कारभार (कारोबार)
में दस्तल देनेकी बिजाजत न होगी तो करभार भी नहीं किमा जा
सकता । जिस जगबिख्यात सुनके पीछे सिर्फ भापासौष्ठव या
अनुप्रासकी सज्जत नहीं है । उसमें लज्जतकी अपेक्षा अमेरिकन
जनताका पुरुषार्थ ही प्रमुख वस्तु है । साहित्यकी अन्नति जनता
की अन्नतिके साथ हो होती है । आपके जिसेके किसानोंने गुज-
राती भापामें जो बुद्धि का है वह अपनी दो चार परिपक्व भी न
कर सकेंगी । 'हमने वस्त्रभमाजीके हाथों अपना सिर सौंपा है न
किनाक' । जिस वधनपर गुजराती जनताको हमेधा नाम रहेगा ।
'हमारे सचेसे बन्दूकें और तापें रस्तत हैं मगर कभी बिस्साते भी
नहीं । हमारे बासबन्धोंको बन्दूकों और तापोंका मजा बल्लवायेंने
तो हमारी मौलाव तो सूघरेगी । यह मेक ही वाक्य गुजराती
भापाका बीर्यशाली ब्रामेके लिये काफ़ी है । सावरमतीके किनारे
गांधीजीने और बारडोली के सेतोंमें वस्त्रभमाजीने जिस भापाको
मड़ा है वह भापा अपनी स्वाभाविकतासे ही धीरोन्मात और
प्रीक बनी है । साहित्य जनताक पराक्रमका प्रसाद है । बुड़ा
मिशनरी टेस्सर हमसे कह गया है, 'यथा भापकन्ततथा भापा' ।
साहित्यकी अन्नति करनी हो तो अपने जीवनको अन्नत करो ।
साहित्य जीवन की छाप है साहित्य जीवनकी सुगंध है ।

सुरत साहित्य मंडल

१५-६ ९८

३

साहित्योपासना

कोभी परीसामें पास हो जाय किसीके घर लड़का पैदा

किसीका विछूँडा हुआ भागी फिरसे मिल जाय या किसीको सट्टरीमें बिनाम मिल जाय तो उस सबरका तार खानेवालेका वह कुछ-न-कुछ बिनाम देता है। मालिकका तारका महत्त्व जितना अधिक होगा उतनी मात्रामें तार खानेवालेके बिपयमें अक प्रकारकी उपकार-धुइसी उसके मनमें रहती है। और जिसलिये अच्छा-सा बिनाम देकर जिस उपकारकी पूर्ति करने की कोशिस करता है। असलमें देना जाय तो तार खानेवालेका उपकार कैसा ? तारका मजमून बनानेमें उसका हिस्सा थोड़ा ही हुआ करता है ? मनीआर्डर या पारसख खानेवाले डाकियेकी हालत भी असी ही है।

फिर भी आनन्दमूढ़ होना मनुष्यका स्वभाव है। लेकिन जिस मनुष्यस्वभावके कारण बिनाममें मिला हुआ पैसा जेबमें डालनेवाला डाकिया अगर अपनी ही धडाबी महसूस करने लग जाय तो उसके जैसे मूर्ख कौन होगा ?

अध्यापककी कुर्सीपर बैठकर बिद्यार्थियोंके सामने सुन्दर साहित्य पढ़ानेका काम जो लोग करते हैं उनके प्रति भी किसी तरहकी कृतज्ञताधुइ बिद्यार्थियोंके मनमें रहा करती है। साहित्य क्षेत्रमें अच्छे-अच्छे फल धुननेमें अध्यापककी कृतकृता सदभिरुचि और बिद्यार्थीका कल्याण समझनेकी सद्बुद्धि जिन सब बातोंका महत्त्व है जिसमें कोई शक नहीं। लेकिन अगर अध्यापक ऐसा गर्व करेगा कि उन परिपक्व साहित्यफलोंको मानो मुसीने जन्म दिया है तो उसका बैसा करना हास्यास्पद होगा।

जैसा मानना कि हमें जिस वस्तुसे आनन्द हुआ उसी वस्तुका हमारे कहनेसे-आस्वाद्य लेकर दूसरा आदमी उतना ही आनन्दित हो जाय तो वैसे करके उसने हमारे आनन्दको दुगुना बनानेमें मदद ली—यह अमीका हमारे ऊपर उपकार है, धायद ठीक होगा।

जो हो दुनियाकी सरफ देखनेकी दृष्टि और जीवनको उन्नत बनानेका मार्ग जिस साहित्यमें बिबाद और सुमग ङंगसे व्यक्त

हुआ हो वह साहित्य सिर्फ पढ़कर रहने देनेके लिये नहीं है बल्कि अमृतमय रसायनकी तरह अस्वका विधिपूर्वक आदर युक्त सेवन करना पड़ता है। परन्तु जो अकेले बार साहित्योपनीषद् मन जाता है उसे भी या खीरपरोसनेकी ध्वी (धमधी) की तरह सिर्फ परोसनेका आनन्द लेकर ही बैठे रहनुकी आदत पड़ जाती है। और वह किसी बातका विचार करता रहता है कि वह मिठाई किस तरह लोगोंके सामने परासनेसे परोसनेवालेका भिखनेवाली बाह-माही अंगे मिले। यह दर्वीश्रत निष्काम हा या स्वकाम जीवन को अन्नत करनेवाला तो हरगिज नहीं है।

साहित्य—अथ साहित्य—असलमें देखा जाय ता हृदयमें आनिजात्य उत्पन्न करनेका और जीवनको अन्नत बनानेका अकेला साधन-मात्र है। साहित्यका केवल प्रचार करनेकी अपेक्षा उसे हजम करके अपना जीवन अन्नत करके सेवाद्वारा अम जीवन की सुगन्धि फैलाकर समाजको और अपनेको कृताथ बनाया चाहिये। ऐसी सेवा करते-करते हमको भी किसी दिन मरत्वती—वैखरीका उपयोग करनेका मौका मिल जाता है और हमारे हाथस या मुखसे प्रमन्न साहित्यका निर्माण होता है। जिस वगसे होनेवाले साहित्यका प्रचार अपरिहार्य सहज और शुभ-परिणामकारी होता है।

अच्छा साहित्य देखकर मनमें सिर्फ परोसनेवालेकी वृत्ति जागृत नहीं होनी चाहिये बल्कि भिष्ट सह भुग्यता की प्राचीन आज्ञाके अनुसार या सामाजिक मनोवृत्तिसे अस्वका सबन करके भिष्टमित्रके साथ अपना जीवन अन्नत और परिपुष्ट करनेकी तरफ ही हमारा अस्वक हाना चाहिये।

यहाँ तक किमे हमने विवेचनमें कोमी असाधारण बात कहो हो सो बात नहीं। किन्तु परोसनेकी वृत्ति का दोष आजकलक अध्यापक ललक प्रचारक कवि और पत्रकार सबमें बहुत बढ़ गया है और जिससिमे साहित्यका सेवन करके साधना द्वारा अंगे हजम करके जीवनको अन्नत बनानेकी ओर

कापरवाही होने लगी है कि अबसमय लोगोंको भी यह छोटी-सी सूचना करनेकी जरूरत पैदा हो गयी है।

कोजी भी ग्रन्थ पढ़ते वक़्त ग्रन्थकारकी ब्रुति और दृष्टिके साथ तवाफ़ार होकर पढ़ना चाहिये। लेकिन ग्रन्थके बारेमें कभी प्रामाण्यबुद्धि उत्पन्न नहीं होने देना चाहिये। ज्ञान चाहे जहाँसे चाहे जैसा मिले तो भी तारसम्य बुद्धि तो अपनी ही होनी चाहिये। प्रत्येक ग्रन्थका काव्यिक, देशिक और वैयक्तिक (व्यक्तिगत) संस्करण करना ही पड़ता है। यह जो कर सकता है उसीका वाचन सफल और कृतार्थ होता है।

हिडकना बोक

१९३२

४

साहित्यकी आजकी ओक कसौटी

सत्कारी लोगोंका पक्ष लेकर राजा भर्तृहरिने साहित्य सगीत और कलासे बिहीन लोगोंको बे-सींग-और-धुँधके पशु कहा है। यह लिखते समय भर्तृहरिक मनमें साहित्यके बारेमें किस्ना झूठा स्याल होगा। आजकी प्रथाके अनुसार अगर हमने उस साहित्य-स्वामीसे पूछा जाता कि 'आपकी साहित्यकी परिभाषा क्या है?' तो तुरन्त ओक वाक्यमें उसने कह दिया होता 'नरपशुका जो पुख्योत्तम बना सकता है वह साहित्य है। भर्तृहरिकाका 'अेकान्ततो निःस्पृह' पंडित न सोम मा कीर्तिते कलचायेगा न राजा स भी बरेगा जैसे ही मनुष्योंको हम साहित्यवीर कह सकते हैं।

साहित्य देवी शक्ति है। जिस शक्तिके बरूपपर निर्भर मनुष्य भी लोकप्रभु बन सकता है और महान् सम्राट् भी राखदंडसे जो कुछ नहीं कर सकते उसे शब्दशक्ति द्वारा आसानीसे साधता है। राजाको तनखाह देकर अपने यहाँ 'प्राणनाणप्रबन्ध-मर्ति' हृदयसून्य सिपाही रखने पड़ते हैं। लेकिन साहित्यसम्राट्के

पास सहृदय सज्जनोंकी स्वयंसेवी फौज हमेशा तैयार रहती है। सच्चा साहित्यवीर यह नहीं कह सकता कि फलों बीज मरे सिय 'असक्य' है। साहित्यकी दीक्षा लेनेके बाद उसे तो प्रत्येक ग्याम्य और धर्म्य कार्य अपना ही समझना चाहिये। सुखी भोग फुरसत के बरत समय बितानेके लिये कुछ अच्छा-सा साहित्य पढ़ना चाहते हैं। उसकी पूर्ति करनेसे और भाषा सौन्दर्यके नये-नये प्रकार अल्पन्त करनेसे साहित्यकी सेवा हां गयी ऐसा बोधी न माने। लोगोंमें अस्वाहू पैदा करना लोगोंकी क्षमवृत्तिको जागृत करना और सरस्वतीके प्रसादसे लोगोंका धर्मतेज प्रज्ज्वलित करना साहित्यकारका काम है। सिर्फ जनरजन करना लोगोंमें जो-जो बलियाँ अल्पन्त होंगी उन सबके लिये पर्याप्त आहार दे देना साहित्यकारका धंधा नहीं है। 'असे लोगोंमें मैं नहीं हूँ'— कहकर भर्तृहरिने गाया था —

'न तटा न बिटा न गामका न परजोह-निबद्ध-बुद्धय' अित्यादि।

सौन्दर्यके साथ अगर जीस् हां तभी वह शोभा देता है साहित्यके साथ सात्त्विक तेज हो तभी वह भी इत्थार्थ होता है।

हमारे जमानेमें मानवताकी कसौटी करनेवाला अंक बड़ा सवाल हमारे सामने खड़ा है। प्रत्येक मनुष्यको यह कसता है— राजसवकको तथा अनसवकको समाधिकारियोंको तथा अर्थाधिकारियोंको हिन्दुओंको तथा औरोंको। जिस तरह सेतोंमें, हमारी धारणाओंमें अस्पृश्यता धूस गयी है वह जबतक जड़मूलसे निकल न जायेगी तबतक हमका धान्ति भिन्ननेवाली नहीं है।

राजनैतिक पुरुष कमर कसकर घुसने पीछ पड़े हैं। सामाजिक रुढ़ियों के विषय में झुकासीन रहनेवाले हमारे छाधुसन्तोंने भिन्न अस्पृश्यताकी बबनाम करनेके लिये अपनी प्रासादिक वाणीका प्रयोग किया है। महाराष्ट्रमें बंद्योंमें तुकाराम और ब्राह्मणोंमें गृहस्वायमी अकनाथ और ब्राह्मणारी रामदास अस्पृश्यताकी बर्णित न कर सकते थे। गुजरातमें नानो संत भग्यो और भक्तशिरोमणि नरसैया अस्पृश्यताको दूर करनेके लिये

धर्मवीरकी तरह रहे हैं। आजके जमानेमें अद्यामूर्ति अद्यानन्दजीका बलिदान भी अिसीस्मिये हुआ है। साहित्य-वीरोंको भी आज अपनी शक्ति—शक्तिसर्वस्व—अिसी धर्मकार्यमें लगानी चाहिये। अस्पृश्यतानिवारण हमारा युगधर्म है। जिसमें पहले कि हम मर जायें, अस्पृश्यता भर ही जानी चाहिये करना सनातन धर्मके भी टिकने की आशा नहीं है।

१९२९

५

बाह्यी साहित्यकार

जिस बिश्वास बिश्वासमें हमारे जीवनसे छेष्ट कोभी भी बस्तु नहीं है। हम जो कुछ देखते या सुनते हैं जो कुछ हमारे मनमें या अनुभवमें आता है वह सब जीवनक क्षेत्रमें आ ही जाता है। कल्पना-सृष्टि और आदर्श-सृष्टि भी जीवन-जगतके दो सब ही हैं और अज्ञात अनन्त तो जीवन-जगतका कितना कहा जा सकता है।

और मरणको क्या हम जीवनक्षेत्रके बाहरका समझे ? नहीं हरगिज नहीं। मरण भी जीवन हीकी एक अतृष्ट विमूर्ति है। जीवनमें जो कुछ अपूर्ण रह जाता है वह मरणमें पूर्ण और कृतार्थ होता है। मरण के बारेमें हम जरूर कह सकते हैं—

येथें नाहीं झाली कोथाजी मिरास । आस्या याचकास कुयेबिरी ॥

(यहाँ तो जाते जो याचक आ जाय उसको कभी मिरासा नहीं हुआ करती। सबसे ऊपर बसकी ओसी ही हूपा रहती है।)

दिन और रात मिसकर जिस तरह पूरा दिन एक होता है उसी तरह जीवन और मृत्यु दोनों मिसकर सम्पूर्ण जीवन होता है। दिनके बसत सबंध सफेद अंधेरा फैला होता है और अिससमिये हम सिर्फ एक सूर्य और एक पृथ्वी तक ही देख सकते हैं। रातके बसत काळा निर्मल प्रकाश चारों ओर फैल जाता है

जिससे आकाश खुला हुआ दिखाई देता है विस्तृत मालूम होता है उस प्रकाशमें हम अनेक पृथ्वियाँ और अनन्त सूर्य देख सकते हैं। पत्रिका वैभव दिनके वैभवकी अपेक्षा बड़ी गुना अधिक होता है और इसीलिये अनन्त सूर्योंके दर्शन एक साथ होते हुअे भी हमें उनमेंसे किसीका भी साप सहना नहीं पड़ता। अनन्त कोटि सूर्य अकत्र चमकते हैं फिर भी वह हमें शान्ति ही प्रदान करते हैं।

जिस तरह मनुष्य अपने बचपनमें स्कूल में बहुत-से सबक सीखता है और बड़ा होनेपर व्यापक जीवनमें उन्हें अुपयोगमें लाता है या प्रयोगशालामें छोटे-छोटे प्रयोग करके वाकमें लाब्ध-व्यवहारमें उन प्रयोगोंका विस्तार करता है उसी तरह हम अपनी सारी आयुमें जो व्यक्तित्व और अभ्यास आत्मसात् करते हैं उसीको मरणके द्वारा व्यापक और बृहत्तम बनाते हैं। किसी किम् जैसा कहा जाता है कि मरण ही जीवनका नया और भुत्कृष्ट संस्करण है। जीवन और मरण मिलकर जो एक बृहत्तम वस्तु बनती है उसीको ब्रह्म कहा जाता है। मृत्युसं अलग कुछ भी नहीं मृत्युसे अुष्ण कुछ भी नहीं। अनन्तसे अधिक अुष्ण क्या हो सकता है? अनन्तकी ओर देखनेके पहलू अनन्त होत है ऐकित मूल वस्तु तो 'अकमेबाद्वितीयम्' ही है।

अकार प्रणव जिस तरह परब्रह्मका वाचक है उसी तरह साहित्य भी जीवनका—सम्पूर्ण जीवनका—वाचक हा सकता है। अितनी बड़ी प्रतिष्ठा साहित्यकी है। ऐकिन अुसकी साधना अत्यन्त सावधानीसे अुचित ढगसे होनी चाहिये। जिस तरह मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करनेके बाद ही अुसे दवत्व प्राप्त होता है उसी तरह साहित्यकी प्राणप्रतिष्ठा करनेके बाद ही अुसे प्रणव पूर्यता और वाचापन्न प्राप्त होती है। प्राणप्रतिष्ठा करना धेक देवी पिद्या है, अमर-कला है। यह बिद्या यह कला जिसने प्राप्त की है धेसा कवि धायद ही मिलता है, कविता नाम धारण कन भगोंकी तरह छाती निकालकर अिधर अुधर भुत्कनेवासे पाप

जीव अनेक हैं। उनकी तो हम बात ही छोड़ दें।

प्रतिमाशास्त्री चित्रकार सृष्टि-सौन्दर्यको चित्रित कर उसे स्थायी बनाता है। यों तो सृष्टि-सौन्दर्य हम अपनी आँखों देखते ही हैं, उसे चित्रबद्ध करनेकी क्या जरूरत ? ज्यादा-से-ज्यादा लेकिन चित्रकारका कार्य तो कुछ और ही है। वह यह सिखाता है कि प्रकृतिका सौन्दर्य आँखसे नहीं अपितु हृदयसे कैसे देखना चाहिये। प्रत्येक सृष्टिकी जगह वह प्रति-सृष्टिका निर्माण करता है। जिसकी बनायी हुई छवि जिन मनीषी सृष्टिकी जीवनमें अन्तर्भाव होनेपर भी वह साफजीरपर जीवनसे असंग ही दिखायी देती है और नित्यके अनुभूत जीवनपर कुछ और ही अलौकिक प्रकाश डालती है। चित्रकार की प्रतिमा अन्तर्वाह्य विश्वको हृदयलोतमें छराबोर कर रसस्निग्ध बनाती है। जिसीकिये तो रसिका की दृष्टिमें चित्रकार तीर्थरूप बन जाता है। जिस तरहके अजुब कोटिके चित्रकार दुनियामें बहुत ही कम हुए हैं। नाम-मात्रके चित्रकार तो हर घरकी दीवारपर लटकते या प्रत्येक प्रकाशनके अंगरेमें साँसे हुअे दिखायी देते हैं।

सच्चा साहित्यकार सबक नहीं सिखाता बल्कि दृष्टि देता है। जिसीकिये शिक्षकके पदपर बैठे बिना ही वह गुरुम्यान प्राप्त करता है। किसी अंधेका हाथ पकड़कर अगर उसे हम एक कमरेमें ले जाय और वहाँकी प्रत्येक वस्तुका उसे स्पर्श कराके उस कमरेका परिचय दिला दें तो वह उसमें जामानीसे रह सकता है और अपना नित्यका व्यवहार भी चला सकता है। लेकिन अतना झंझट करनेके बजाय अगर हम उस अंधेका दृष्टि दे सकें तो एक क्षण पूर्वका वह अंधा कमरेकी सभी वस्तुओंका मानो स्वामी बन जायगा। फिर तो उसे कमरेकी हर चीजका परिचय करानेकी जरूरत नहीं रहती। अब तो वह हमारा आधिपत नहीं साधी बन गया।

साहित्यकी महिमा ऐसी ही है। साहित्य पाठ नहीं पढ़ाता

दृष्टि देता है। साहित्य जीवनका सिर्फ झुड़ीपन है रहस्योद्घाटन है, साक्षात्करण है।

ह साहित्यगुरु परमात्मन्, तेरे अवतारके सदृश ब्राह्मी साहित्यकार जिस दुनियामें भेज दे। दुनिया आपद्ग्रस्त है उसे दान्ति प्रदान कर उसे कृतार्थ कर।

करवरी १६३७

६

सौन्दर्यका मर्म

साहित्यकी भाषा मानां भेक बतन है। साहित्यका मूल्य जिस बातसे निर्धारित होता है कि हम उस बतनमें किस किसका माल भरना चाहते हैं।

कुछ लोग समझते हैं कि साहित्यकी सारी कल्पना उसके रूप और सौन्दर्यपर रखी हुयी है। कोभी भी विचार या कल्पना अगर आकर्षक रूपमें रखी हुयी हो उसमेंसं चमत्कृति पैदा होती हो तो वह साहित्य है। भारी-से-भारी मूल्यवान विचार या अनुभव और आसमानतक बुझनेवाली कल्पना अगर राक्षक रूपमें न रखी गयी हो तो उसे हम साहित्य न कहेंगे। उसे दर्शन कहो घमशास्त्र कहो या सन्तबाणी कहा। उस आप साहित्य नहीं कह सकते।

जिसके विपरीत अगर कोभी विचार बिस्कुल मामूली हो कल्पना छिछली हो आदस हमका और समाजबिनाशक हो सकिन अगर वह मनोरंजन करना हो और उसका स्वरूप चित्ताकर्षक हो तो वह अच्छे कोटिका साहित्य कहा जायगा। मनो-विनोद चित्ताकर्षण और रूपलावण्य ही साहित्यका प्राण है।

जिसमें कोई शक नहीं कि कोभी भी बागूम्यापार अगर चित्ताकर्षक रूपमें पैदा न किया गया होता तो हम उसे सरस साहित्यक तीरपर नहीं पहचानते लेकिन अगर उस साहित्यमें भाषा हुआ विचार हीन हो अनुभव छिछला हो, और कल्पना

सजी हुई हो तो सिर्फ रूपपरसे ही हम उसे अत्युत्तम साहित्य नहीं कहते ।

अब अरा रूपका स्वरूप जाँच लें । कोमी भी युवक अथवा युवती शरीर और मनसे निरोग हो व्यायाम संयम तथा प्रसन्नतासे अक्सरे अपने जीवनकी अच्छी रक्षा की हो तो अक्सर अपनेआप ही अमुक मात्रामें सौन्दर्य आ ही जाता है । यह सौन्दर्य साधनसे सरह-सरहके खुशबूदार तेलोका अस्तेमाल करनेसे या मये डंगके अनेक रंग और वसाइयाँ लगानेसे नहीं आ सकता । आरोग्य और जीवन स्वयं ही सुन्दर होता है । सुन्दरता और आकर्षकता अक्सर सहज सुवास होती है । लेकिन जिसके विपरीत अगर शरीर बीमार हो मन विकृत हो स्वभाव स्वार्थी चिड़चिड़ा या अहंकारी हो और यह सब छिपानेके लिये कपड़ों की सजावट, शिष्टाचारकी तमीज और हास्यकारके नाज व नसरों द्वारा सौन्दर्यलाया गया हो तो कुछ भूखे लोग अक्सर वमक दमकसे भले ही आकर्षित हो जायें लेकिन जानकार स्वच्छ अमिद्वि रसनेवाले लोग यह सारा प्रयास देखकर दुखी ही होंगे उनके मनमें ग्लानि ही पैदा होगी ।

साहित्यका भी ऐसा ही रूप है । साहित्य जीवनका प्रतीक है । जीवन अगर निरोग प्रसन्न सेवापरायण प्रेमपूर्ण और पराक्रमी होगा तो अक्सर सभी व्यापार आकर्षक और प्रभावशाली होंगे । जिस विचारमें आर्यता है अद्वैतता है सर्व-मंगलकारी कल्याणकी भावना है अक्सर शब्दशरीर आप-ही-आप भाव गभीर, ललित-कोमल और प्रसादपूर्ण होगा । अच्छा साहित्य सुन्दर होता ही है लेकिन सज्जजन करनेसे कोमी साहित्य अच्छा या शिष्ट नहीं होता ।

जिसलिये केवल साहित्यकी अपासना करनेके बजाय अगर हम आर्य और प्रसन्न जीवनकी अपासना करें तो साहित्यकी सुन्दरता स्वयं ही फूट निकलगी । व्यक्तिकी आर्यता ही शिष्टाचार या तमीजकी आत्मा है । निरा शिष्टाचार हास्यास्पद होता

है या दिलकी मुकता देता है। खोसकी सोन्दरोंपासना जिससे अन्य बोझी असर पैदा नहीं कर सकती।

जिस साहित्यमें प्रगतिशील जीवनकी प्रेरणा अथवा प्रतिध्वनि हो वह साहित्य प्रगतिशील है। उसे साहित्यमें और सब कुछ हो या न हो अनुकरण तो हरमिज नहीं होना चाहिये। दूसरा कुछ हो या न हो अहंकारका अभाव तो कभी नहीं होना चाहिये।

जून १९३७

७

प्राचीन साहित्य

साहित्यकारोंने कविताकी सुरुना कान्तासे की है। शास्त्रकारोंने कुटुम्बमें स्त्रीकी जिस प्रतिष्ठाकी कल्पना की है वही प्रतिष्ठा संस्कारी जीवनमें साहित्यकी भी है। आ समाज स्त्रीकी प्रतिष्ठाको भूल जाता है वह साहित्यकी कुंवर भी क्या करेगा ?

जो मनुष्य जीवन भर व्रत-नियमादि किया करता है, उसे यह भान नहीं रहता कि हम कहाँ थे और कहाँ जा रहे हैं। उसे के लिए भूत और भविष्य दोनों शून्य हैं। क्या हमारे टीकाकारों का भी यही हाल हो गया होमा ? संस्कृत-साहित्यक रहस्यको प्रकट कर देनेवाले टीकाकार कम नहीं हैं। यदि साहित्यका कृत्योत्तर करना हो तो हमारे टीकाकारोंकी सना मिलनी बड़ी है कि वह जिस देवको चाहे हरा सकती है। परन्तु साहित्यको व्यापक दृष्टिसे देखना किसीको सूझा ही नहीं। जिस तरह कालिदास पुष्पक विमानमें बैठकर लङ्कासे अयोध्या तकके प्रदेशका निरीक्षण विहग-दृष्टिसे कर सबे अथवा मध्यपर दया करके वह हिमगिरिमें अलकापुरी तक भेषका भोजन तक भूमि तरह एक भी टीकाकारको यह नहीं सूझा कि वह साहित्य-मण्डका समग्र अवलोकन करे। जिस तरह योना दस-पाँच मनुष्याका ही मनोरञ्जन कर सकती है भूमिका सज्जनों किसी

महासभामें व्याप्त नहीं हा सकता उसी तरह टीकाकारोंकी दृष्टि भी एक सम्पूर्ण श्लोकके बाहर नहीं पहुँचती। ज्यादा-से ज्यादा यदि कुन्होंने यह बता दिया कि नान्दीका श्लोक सम्पूर्ण नाटककी वस्तुओंको किस तरह सूचित करता है तो वे हतार हो जाते हैं। हमारे साहित्य-मीमांसक भी जिसनी गहराईमें अंतर सके हैं, अतने विस्तारसे नहीं देख सके। वे एक श्लोकके भीतर दस-पाँच अलंकारोंकी समुष्टि सिद्ध कर सकते हैं परन्तु यह बतलाना वे अपना कर्त्तव्य नहीं समझते कि एक सम्पूर्ण महाकाव्य या खण्डकाव्य किस तरह अकराग है और उसकी आत्मा किसमें है ? जिसका अपवाद-रूप एक क्षेमेन्द्र माना जा सकता है। जिस काश्मीरी महाकविने अलंकार और रसोंके बाद औचित्यका महत्त्व बतला दिया है। अमने एक ही कविके एक ही श्लोकका रस निचोड़नेके बदले संस्कृत-साहित्यके बत्तीस विख्यात कवियोंकी मिल्न-मिल्न काव्य-कृतियोंको लेकर अमके गुण और दोषोंकी विवेचना की है। यह निष्पक्ष कवि दोषोंको बताते समय अपने दोषोंको भी ध्यानमें लाना नहीं भूलता। तथापि यह कल्पना तो क्षेमेन्द्रका भी नहीं सूझी थी कि एक सम्पूर्ण नाटक अथवा काव्य लेकर उसके रहस्यकी खोज की जाय। जिसकी दृष्टि से औचित्य था—

पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणेऽलंकरणे रसे ।
 क्रियायां कारके रित्ने वचने च विशेषणे ॥
 उपसर्गे निपाते च काले वेशे कुले व्रते ।
 तत्त्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सार-सप्रहे ॥
 प्रतिभायामवस्थायां विचारे साम्यवाशिपि ।
 काव्यस्वांगेषु च प्रहारीचित्यं व्यापि जीवितम् ॥

जितनी ही जगहोंमें औचित्य-विचारकी खर्चा करके कवि रक्त गया है। रवीन्द्रनाथने हमें साहित्यकी ओर देखनेकी एक-मयी दृष्टि दी है।

जैसे नाटक काव्यका निष्कर्ष है उसी तरह कवि भी सामाजिक जीवन राष्ट्रीय आकांक्षा जातीय आदर्श अथवा प्रजाकी वेदनामाको स्वयंभू मूर्ति है। जब कोई भट्टनारायण 'वैष्णु-संहार' लिखता है तब द्रौपदीका शोध भीमकी प्रतिभा कर्णका मत्सर और अर्जुनका भीमका चित्र खींचनेके बाद वह राष्ट्रीय अत्याचार और पतनकी भीमांसा भी अपने ढंगसे करना चाहता है। जब कासिदास 'रघुवंश' लिखने बैठते हैं तब रघुके वृत्तकी ही नहीं किन्तु अश्विनी भाय-संस्कृतिकी प्रकृति और विद्वानकी भक्ति कर देना चाहते हैं।

हमारे कवियोंकी कृतियोंकी ओर ऐतिहासिक अथवा सामाजिक दृष्टिसे देखनेकी शक्ति भले ही पवित्रमी छागोंने हमें सुसाई हो परन्तु रवीन्द्रनाथका भाव हृदय तो संस्कृति-साहित्यकी ओर आर्य-दृष्टिसे ही देख सका है। जिस प्रकार एक समय चित्रकार केवल दस-पाँच लकीरोंमें संपूर्ण चित्रका पृथित कर सकता है उसी तरह रवीन्द्रनाथने भिन्न-भिन्न प्रसंगोंपर लिख हुए पाँच-सात स्फुट निबन्धोंमें ही यह सब दिखा दिया है कि संस्कृत-साहित्य क्या है मन्त्र-कविका हृदय कैसा है हिन्दुस्तानका इतिहास किस पुरुषार्थको लेकर बसा है आदि। सम्मेलन-कवियोंमें ऐतिहासिक दृष्टि भले ही न हो परन्तु मनमें ऐतिहासिक हृदय तो अवश्य है। सामाजिक मुक्त-दुर्गोंकी प्रति ध्वनि मनमें हृदयोंमें जरूर झुंझी है। राष्ट्रके अत्यधिक श्राव्य बे मानन्दित होते हैं और युगकी मूर्छाके भाव मूर्छित। शायोंका अंध-धन दगकर जनता हृदय रोता है और जब ऐसा होता है तब वे प्रेममग्ने और मनोहर बच्चोंमें समाजकी सुवृद्ध करना चाहते हैं।

जहाँ साम्राज्यवादमहर्षी चलता जहाँ भोक्तृपान्त्रकार 'अध्वं वाह्विरीम्यप न च कश्चिच्छुणानि मे' जिन तरह अग्न्यगदन करते हैं वहाँ कविजन अपनी माहुर्यनामें समाजके हृदयका जागृत करके समाजकी उन्नतिके मार्गपर ले जाते हैं।

याम्रवत्कम, पारासर और मुनकी जातिके अनेक स्मृतिकार समाजपर जो असर नहीं कर सके वह असर छटेरोंका प्रमुख वात्सीकि अथ वमर-काव्य द्वारा कर सका है। श्री शंकराचार्य ने प्रस्थानत्रयीपर भाष्य लिखकर जो दिग्विजय प्राप्त किया उससे कहीं बढ़कर दिग्विजय पटपदीके समान सुन्दर स्तोत्रोंको लिखकर जन महा-भरिवाजकाचार्यने प्राप्त किया है। शंकराचार्य को शास्त्रार्थ करते समय लच्छन-मच्छन-द्वारा विरोधियोंकी बुद्धिपर हठ-पूर्वक विजय प्राप्त करनी पड़ी परन्तु जब वे परम हंस अपने सुन्दर स्तोत्रोंका आलाप करते होंगे तब लोक-हृदय स्वेच्छासे राजी-सुखीसे पिञ्जड़ेमें आगया होगा। जैसे कवियोंका हृदयत भाव प्रकट करनेके लिए उनके समान ही समर्थ कवियोंकी आवश्यकता थी। बारह वर्ष व्याकरण रटकर, दूसरे बारह वर्ष तक न्याय-शास्त्रके छिलके छीरनेके बाद साहित्य शास्त्रकी 'सर्जरी' सीखकर तैयार हुए टीकाकारोंका वह काम नहीं।

वात्सीकि भवभूति भास और कालिदास जैसे कवियोंने रवीन्द्रके समान समालोचकको पाकर 'अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफला क्रिया' कहकर जुसी तरहकी कृतार्थताका अनुभव किया होगा जो न्युटन और कप्लरका जन्म होनेपर ब्रह्मदेवको अपनी सृष्टि रचनापर हुआ होगी। काल मिरवधि है और पुष्पी विपुला है यह हमारे कवियोंकी थोड़ा रवीन्द्र जैसे समान-धर्मात्माको देखकर चरितार्थ हुआ होगी।

जब पुराने टीकाकारोंने हमें आश्चर्यक दृष्टि नहीं दी तब हमारे पादचार्य पण्डितभूम्य अध्यापकोंने हमें अल्टी ही दृष्टि दी। अनुहानेयही पाठ पढ़ाना शुरू किया कि यूरोपियन आदर्शानुसार हिन्दी इतिहासमें कुछ भी नहीं यूरोपियन सिद्धान्तार के अनुसार हिन्दी-काव्य हमेशा तुच्छ समझ जायेंगे मितना ही नहीं वरन् 'सोमं केनचिद्विपुपाण्डुसकृणा' के समान दण्डकका जिस समाजमें निर्माण हुआ जिस समाजने किस्मोंकी दीवारोंमें

नहीं किन्तु वन-उपवनकी गोदमें ही परवरिष्ठ पायी है असी समाजके कवियोंको निसर्ग निहारनेको नेत्र नहीं है असा कहनेकी भी बिठायी करमेमें वे और अनुके सिष्य नहीं हिष करते । हृत्सी मनुष्य जबतक अपना-मा रंग और अपनी-सी नाक स्या होठ किसीके नहीं देखते तबतक उसे कभी सुन्दर नहीं मानते ।

हिन्दुस्तानका इतिहास अज्ज्वल है व्यापक है और रहस्य पूर्ण है । पर बहु यूरोपियन इतिहाससे बिल्कुल भिन्न है । रवीन्द्र नाथने हमें बताया है कि वह सरकारी तहखानो और तवा रीखोंमें नहीं बल्कि अस्त्र देशके साहित्य आदिमें मिल सकना है जहाँ राष्ट्रीय-जीवन सबीब रूपमें विद्यमान है । हमारी रंग भूमि तरह-तरहके उपकरणोंसे 'शो-स्म' का प्रदर्शन नहीं करती जिसका कारण हमारा जगलीपन नहीं परन्तु वह सर्वोच्च अभिवृत्ति है जो यूरोपियन टीकाकारोंकी कल्पनामें भी नहीं आसकती । पर हमें यह समझना भी रवीन्द्रनाथसे ही नसीब में बदा था । हम नहीं जानते कि कालिदासका मध यगके सन्देशको अलकापुरी से गया था या नहीं किन्तु रवीन्द्रनाथ ने तो मुसीको अपना दूत बनाकर उसके द्वारा हमें प्राचीन समयके भारतका साक्षात्कार कराया है । राष्ट्रीय हृदय जिसे स्वीकार करता है, वह काव्य इतिहाससे पदको प्राप्त कर सकता है । यह अन्होंने रामायणकी भीमांसा करके सिद्ध किया है । जिस तरह अनेक पद्धतियोंसे अन्होंने संस्कृत-साहित्यका अद्भुतम किया है ।

परन्तु रवीन्द्रनाथकी प्रतिभा संपूर्णरूपसे प्रकट हुआ है अनुके कुमार-सम्भव और दाकुन्तलपरब निबन्धोंमें । जमन कवि मटेकी अंक-बलोकी टीकाको लेकर रवीन्द्र बस है और अन्होंने अपनी अत्यधिक दक्षिणसे यह सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि किस तरह दाकुन्तल कालिदासकी सम्पूर्ण वृत्ति है । दोषसपियरके टेम्पेस्टके साथ दाकुन्तलकी तुलना करके

पियरके मुकाबिलेमें अन्होंने कालिदासकी अभिरुचि की श्रेष्ठता-को प्रकट करनेका मौका भी बड़ी अच्छी तरह लेलिया है। शाकुन्तलपर सिखा अुनका निबन्ध एक अपूर्व योग है। कालिदास गेटे, शेक्सपियर और रवीन्द्रनाथ अिन चार प्रतिभा-संपन्न विश्वविख्यात-महाकवियोंका कष्वाद्यममें सम्मिश्रित होना यह कुछ सामान्य वस्तु नहीं। कवियोंकी वाणीमें कल्पनाओंके जाहे जितने फव्वारे भुङ्कते हों तो भी वह वाणी जाली कल्पनामय नहीं होती। यह बात तो रवीन्द्रनाथने ही सबसे पहले अितनी सम्पूर्णतासे प्रकट की है। अुन्होंने बताया कि अुसमें तो व्यक्ति मत या सामाजिक जीवन रहस्यका तत्त्वज्ञान होता है समाज शास्त्र और धर्म-शास्त्र नीति-शास्त्र और सीन्दर्य-शास्त्र अिनके अन्तिम सिद्धान्तोंको तर्ककी दस्तदानी और गड़बड़से बचा कर कविजन अपनी अपूर्व प्रतिभासे अुन्हें अनुप्राणित करते हैं और जीवनक समान अेक सम्पूर्ण और सजीव हृतिका निर्माण करते हैं। 'जो यहाँ है सो वहाँ है जो वहाँ है सो यहाँ है सारी सृष्टि अेक-रूप है' अुपियोंके देखे हुअे अिस सिद्धान्तको कवि जन हमारे सम्मुख मूर्तिमान खड़ाकर देते हैं। सस्कृतमें कवि शब्दसं जो भाव मनमें अुत्पन्न होते हैं वे अंग्रेजीमें 'पोमेट' शब्दसं नहीं होते। कवि अर्थात् ब्रह्मा जो जीवन-रहस्यको दक्षता है अिस अिह और पर-सृष्टि दोनों अेक-सी प्रत्यक्ष है जो अतिवादमें अुतर सकता है जो अिस संसारमें रहत हुअे भी अिस संसारका नहीं बही कवि है। जो धर्म पक्षुको दिसात्री नहीं देता अिसका आकलन तर्क-दृष्टिसे नहीं होता और अिसके लिये व्यावहारिक संसारमें प्रमाण नहीं मिलता अंस अतीन्द्रिय सूक्ष्म और स्वसंबंध अनुभवाका सम्पूर्ण साक्षात्कार करके अुन सब अनुभवोंको शब्द अथवा वर्णके समान मर्यादित साधनों द्वारा दूसरोंके लिये भी प्रत्यक्ष कर सकता है वही कवि है। कवि वे हैं जो अिस सृष्टिकी—अिस बाह्य-सृष्टि और अन्त-मृष्टिकी—आधार-स्वरूप अीदवरी यागमाका अीदवरी सीला

और भीषवरी आनन्दका साक्षात्कार कर सकते हैं। वैदिक ऋषि जब भीषवरी-स्तुतिकी अूमिके शिखरपर पहुँच जाते हैं तब परमेस्वरको ही 'कवि' कहकर पुकारते हैं, जिस सृष्टिको भीषवरका काव्य कहते हैं। जिसलिये कविका सीधा अर्थ निश्चित होना है सृष्टिका रहस्य जाननेवाला। कालिदासने जीवनक रहस्यको किस तरह पहचाना था यह हम तो मस्तिष्कायने जाना और न जाना राखबमट्टने। जिस रहस्यको जान सके गेटे या रवीन्द्रनाथ ही।

कवियोंकी कृतियों पर टीकाकार तो बहुत हो गये हैं परन्तु 'काव्येर अपेक्षिता' में रवीन्द्रनाथने जो रसिकता और वासिष्य बतलाये हैं वे तो अपूर्व हो हैं। 'काव्येर अपेक्षिता' एक असाधारण टीका है। पर वह अुसमा ही अप्रतिम काव्य भी है। रवीन्द्रनाथ एक भी दूसरा निबन्ध न लिखते केवल यही एक निबन्ध जिस देते ता भी साहित्य रसिकाको अनुकी काव्य-शक्तिका पूरा-पूरा पता लग जाता।

मार्मिक पाठकके लिये यह जान लेनेका किसी भारी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है कि वास्तर वाली तथा 'नीका डूबी' मुसी कविक लिखे हैं जिसने 'काव्येर अपेक्षिता' में पत्र संसारका चित्रण किया।

जो यह कहते हैं कि हमारे कवि सृष्टिका निरीक्षण करते ही नहीं मुन्हीं पुरानी अपमानोंको दोहराते चले आते हैं वे न तो स्वयं ही सृष्टिका निरीक्षण करते हैं और न काव्यका परीक्षण। यदि वे टीकाकार रवीन्द्रनाथका यह निबन्ध पढ़ेंगे, जिसमें मुन्हीं कादम्बरीका वर्णन कराया है ता अवश्य अनुका भ्रम दूर हो आयगा। साहित्यकार जो बाणभट्टकी कादम्बरीको नारि केल-पाक कहते हैं अुसका यह वक्रिया अुदाहरण है। बाणभट्टके काव्य-वान्सारमें गेटक समान अनुतोमय सचार तो वही कर सकते हैं वन-बराहके समान वही मुस्तालति भी वही कर सकते हैं हरिणोंके समान कम्पना-तृणाक्षुरोंका अर्थ-बिभीड़ करके मितस्तव वही फेंक सकते हैं अथवा अमिनबमधु-लोक्षुप भ्रमर

के समान वे ही वहाँ स्वेच्छा-विहार कर सकते हैं जिन्होंने हिमालयके समान पर्वत और मेघना या पद्माके समान नदियाँ देखी हैं अथवा जिन मनुष्यों ने पुष्प पक्षी तारे और छद्मकोंके साथ खेलनेमें बरसों व्यतीत कर दिये हैं। संस्कृत-साहित्यमें अंत-सृष्टि और बाह्यसृष्टिका जो सारूप्य और तादात्म्य है उसका सम्पूर्ण वापित्व रबीन्द्रमाचको मिला है। किसीसे काश्चित् (माणमदृ और वात्मीयिक समान कविजन) पुत्र-संक्रात-सम्प्रीक पिताके समान कुतार्थ हो गये हैं।

जबसे हिन्दुस्तानमें 'यूनिवर्सिटी' स्थापित हुई तबसे प्रत्येक ग्रन्थका बहिरंग-परीक्षण करनेकी प्रणाली बहुत ही बढ़ गये हैं। काल-निर्णय पाठ-मेवकी मीमांसा प्रक्षिप्तवाद खड़ा करना यह तो हम खूब सीख गये हैं और यदि अनेक ग्रन्थकारके नाम पर अनेक ग्रन्थ हों तो हम यह भी अनुमान करने लग गये हैं कि अनेक ही नामके अनेक लेखक हो गये होंगे और जिन ग्रन्थों के लेखक भिन्न-भिन्न होंगे। सत्यान्वेषणकी दृष्टिसे और ऐतिहासिक दृष्टिसे भी यह सभी आवश्यक और महत्त्वपूर्ण तो जरूर है। परन्तु यदि हम बगीचेकी छम्बाई, चौड़ाई, उसकी भीतर के फूलोंकी तफ्तील और गिमती आदि अपरी बातोंकी जानकारी करनेमें सम्पूर्ण समय लगा देंगे और फूलोंकी सुगन्धि और फलोंका स्वाद लमा भूल जायेंगे, तो दुष्यन्तके समान रसिक हमें अवश्य कहेगा कि 'इन्द्रियैर्बन्धितोऽसि'।

आज हम शिक्षाका आदर्श और शिक्षाकी प्रणालीमें परिवर्तन करना चाहते हैं। पाश्चात्य आदर्शको गुरु-स्थानमें रखकर उस गुरुदृष्टिसे संस्कृत-साहित्यकी खोज करना हम नहीं चाहते। हम अपने प्राचीन कवियोंके समीप शिष्य-भाव से समित्प्राणी होकर जाना चाहते हैं। आस्तिक जिज्ञासासे अनुसंधान करना चाहते हैं। जैसे अवसर पर संस्कृत-साहित्यके विषयमें वह ज्ञान लेना परमावश्यक है, जो हमारे उस कवि

सभाटमे, जिसके लिये हमें अभिमान है, कहा है ।^१

८

पत्रकारकी बीसा

कभी साल हमें देश-विदेशके अवसर में दिसवस्तीके साथ पड़ता था । पत्रकारके कार्य और कर्तव्यके विषयमें सोचता आया हूँ । बंगमण्डके बादके राष्ट्रीय आन्दोलनमें पहले महाराष्ट्रके अके स्थानीय साप्ताहिक पत्रके साथ और बादमें अके दैनिक पत्रके साथ मैंने अत्यन्त निकटका सम्बन्ध रखा था । जिस वक्तकी जनजागृति और आत्मशुद्धिके आन्दोलनमें भी 'नवजीवन' जैसे पत्रके साथ मेरा बहुतना ही निकटका सम्बन्ध हो गया । और अगर ऐसा कहूँ कि त्रिन वो आन्दोलनोंके बीचके लम्बे अरसेमें विचार और कलमका ब्रह्मधर्म-पालन भी मैंने किया था, तो मुझमें अतिशयोक्ति न होगी । जिस तरह कहा जा सकता है कि पत्रकार-परिपक्षे समस्त अपने विचार रखनेका जितना अधिकार मैंने प्राप्त किया है । लेकिन यह भी सही है कि आजकल पत्रकारके व्यवसायका जो आदर्श बन रहा है उसको दृष्टिक सामने रखते हुये जिस धक्के लिये आवश्यक योग्यता अपनेमें लानेकी चिन्ता किसी दिन मेरे मनमें पैदा न हुमी । मुझे पहलेसे ही ऐसा लगता आया है कि पत्रकारकी अपेक्षा शिक्षाशास्त्रीका कार्य अधिक उपयोगी है । जिसलिये पत्रकारके लिये आवश्यक योग्यता मुझमें आयी ही नहीं । पत्रकारक लिये आवश्यक अके गुण ही यह मुझे निवध लिङ्गनेकी प्रेरणा देता है । पत्रकार प्रधानतया विचार-प्रचारक होता है । विचारका प्रचार करनेकी विचार 'प्रॉडक्ट' करने की वृत्ति कहिये या ग्राह्य कहिये—पत्रकारमें जितनी होती है उतनी पायद ही किमो दूसरेमें हागी । धर्मोपदेशक और

१ कबीर रबीन्द्रके 'प्राचीन साहित्यके' गुजराती अनुबादकी मुद्रिका।

अध्यापकमें भी यह वृत्ति न्यूनाधिक मात्रामें जरूर होती है।

वास्तवमें देखा जाय तो भर्मापदेशक पत्रकार और शिक्षा सास्त्री सीनोंका कार्य लगभग ओकसा ही है। सोयी हुयी जनता जब जागना चाहती है उस वक्त तो पत्रकारके पदको असाधारण महत्त्व और सुसरदामित्व प्राप्त होता है। पत्रकार यानी लोक-शिक्षाका व्यापार्य ब्राह्मणोंका ब्राह्मण और चारणोंका चारण है। जनता जब युयुत्सु हां जाती है सब कभी बार पत्रकारका सैनिक और सेनापति भी बनना पड़ता है और अच्छी तरह साम्राज्यकी भी तालीम लेनी पड़ती है। जहाँ-जहाँ अन्याय होता हो जहाँ-जहाँ दीन-दुर्बल और मूक वर्गोंपर जुल्मो-सितम डाला जाता हो वहाँ-वहाँ सतात्किल जायते के अपने विरुद्धका स्मरण कर पत्रकार बूढ़ पड़ता है। जब जैसे अवसर नहीं होते तब विचार, जानकारी, सम्कार, अभिरुचि और आवश्योंकी प्याबू पलाकर वह समाजसेवक बन जाता है। अज्ञान या बदूर दृष्टिके कारण लोग जहाँ लड़ते होंगे वहाँ 'ज्ञानाजनशक्ताक्या' लोगोंकी दृष्टिको सुद्ध करनेकी वह कोशिश करता है। समाज चक्रके पहिये जब अपना अंतराग मूलकर चीत्कार करने लगते है तब अचित्त स्थानपर स्नेह डालकर वह उस वर्पणको दूर करता है और जब-जब सरकार-दरबारके मौके आते है तबतब वह जनताका प्रतिनिधि बनकर लोकमतको ओकधार बनाकर लोक-सत्तिको सचेत करता है। जिस तरह लोकसेवक लोकप्रति निधि लोकनायक और लोकगुस्की चतुर्विध अुपाधि पत्रकार प्राप्त कर सकता है।

माजकलके वैद्यभुगमें पत्रकारका ओक और ही आवर्त बन रहा है और वह शिष्टसम्मत् भी हो रहा है। 'हमारे सामने भर्मेकी बातें मत किया करो' हम सिर्फ व्यवहार जानते है आवर्तोंके सारम्बरमें गानेको लोगोंसे मत कहो मध्यम या मन्द स्वरमें जो कुछ गबाना हो वही गानेको कहो हमसे साधु या वीर बननेकी अपेक्षा मत रखो बल्कि हमें ऐसी ही बातें मुझाओ

जो नफ़ा और मुक़सानका हिसाब करनेवाले कुटुंबीको पसन्द आयें या अनुकूल हों। दुनिया हमारी है। वीर और साधु लोग समाजके लिये धोमाख्य तो हैं लेकिन वह पगड़ी नहीं बल्कि खुसकी किमारीपर की हुयी पच्चीकारीकी तरह हैं। जिस आदर्शको स्वीकार करनेवाले लोग कहते हैं 'पत्रकारको अपने आदर्शका मान व्यर्थ ही खूना नहीं रखना चाहिये। लोग जो कुछ चाहते हैं उसे मुहैया करना ही पत्रकारका आदर्श होना चाहिये। लोगोंके हम कोभी बिदागुड तो हैं नहीं कि अन्हें मार पीट कर पड़ावें। हम तो लोगोंके मित्रमतगार हैं। ग्राहकोंको जिस मालको जरूरत होगी वह देकर अन्हें खुश रखना ही दुकानदारका आदर्श है। गायकका आदर्श तो यही है कि राजा जो राग चाहे वह उसका रजन करे। लोग हमारे शिष्य नहीं सेठ हैं। जो सेठको सिखावन देने जाय वह नौकर कैसा? ग्राहक को जो धर्मशास्त्र या समय सिखाने लगे वह दूकानदार कैसा?

यहांतक आगये तो फिर ऐसी दूकानदारीका ज्ञान आगे चलता है। दूकानदार जिस बातका खयाल हमेशा नहीं करता कि ग्राहकको कौनसा माल चाहिये। बल्कि वह तो किसी बात का ध्यान रखता है कि अपने पास पड़ा हुआ माल ग्राहकका कैसे आवश्यक मालूम हो। वह अपने ग्राहकको सेठ माननेके बजाय शिखार मानता है और दुनियाको नीचे खींचता है। मुत्तर भारत में आज क्या चल रहा है? कभी पत्रकार आसिस सड़ाई-अमड़े के वकालत बने हैं। मुन्हीनि निगाके धराबखाने खोले हैं, राष्ट्रीय आपत्ति तथा साम्प्रदायिक गलतफ़हमियोंकी पूर्वीपर वह सिंघा रत करना चाहते हैं। लोककथामें जिस तरह गांवका बकवादी ब्रेक प्रधान पात्र होता है उसी तरह यह पत्रकार-समाजके महा पिगुन बनकर बिखरते हैं। दक्खिपियरक आयागोने धोयस्त्री और डस्टिमानाकी जो हास्य कर डाली थी वही हास्य य लोग जिस मानें राष्ट्रकी करनेको तैयार हो गये हैं। फर्क बिसना ही है कि आयागो अपने अपने स्वल्प और परिणाम भली-भांति

जामता था और जानबूझकर बदमाशी करता था। भिन सबकी स्थिति वैसी नहीं है। यह अमागे भागी स्वयं ही विकारमत्त हुये हैं और यादवके (आपसी छड़ाभी) यादवोंका अनुकरण कर रहे हैं।

पत्रकारकी वृत्ति वैसी सोजबाली नहीं होगी चाहिये कि जो कुछ मामल हुआ जाहिर कर दिया। अच्छे खानदानके मनुष्यके पेटमें कभी चीजें रहती हैं। लेकिन कुछ बातोंमें यह होठ तक नहीं हिलाता। पत्रकारको कार्यामन्द सोचना चाहिये न कि बाबानन्दा। वरना कलमकी पटेबाजी अक बार सुरू हो गयी तो फिर सारी दुनियाका सहार हो जायगा। बिस्मयतमें तो जब आन्दोलनों और चर्चा-विषयोंका अकाल पड़ जाता है तब पत्रकार अक दूसरेके खिलाफ अमर टीका कर अक-दूसरे पर भीषित रहते हैं। मिशुको मिशुकं पुष्ट्वा श्वानवत् गुर्गुरायते।”

२

अकबार प्रधानसभा बुलपत्र होता है। जनता के कामका बिचार करके सारी दुनियाकी खबरें देना पत्रकारका प्रथम कर्तव्य है। लेकिन जिस बारेमें और अत्यन्त महत्वके बारेमें हमें औरोंकी आँखेंसे देखना पड़ता है। आंकड़े जिस तरह सरकारसे ही मिल सकते हैं उस तरह जानकारी तो 'रायटर' या 'असोसियेटेड प्रेस' से ही मिल सकती है। वह अपनी ही दृष्टिसे महत्वकी खबरें हमें दे देते हैं और धीरे-धीरे जिस वस्तुको कितना महत्व देना किस सवालको किस दृष्टिसे पेश करना आदि विषयोंमें अपनी दृष्टि हमारे ऊपर लावते हैं। शिक्षा और साहित्यकी तरह वृत्तविवेचन में (जर्मसिम्प) भी हम विदेशियोंके अनुयायी हो गये हैं। उसके कारण आयी हुजी पर प्रत्यय-मेय-वृष्टि (स्वयं मेन्टैलिटी) अग्री नहीं गयी है। आज हमारे यहाँ अनेक पक्ष बन गये हैं और बिचार प्रगति नहीं हो रही है। जिसमें जिस पर प्रत्ययके अवलम्बनका कम

हाथ नहीं है। और आश्चर्य यह है कि स्लेव मेन्टलिटीके खिलाफ आवाज सभी बुझन्द करते हैं। बुतविवेचनका मूल-आधार विश्वासपात्र खबरें हैं। उसका तंत्र हमने बनाया ही नहीं है। बुनियादमें ही परावलयम ।

जब मैंने अंग्रेजी पढ़ना शुरू किया तब पार आनेमें 'टामिस् आफ् अिडिया' मिलता था जिसे पढ़नेकी मैं कोशिश करता था। हिन्दुस्तानकी सभी खबरें पढ़ आनेके बाद मुझे ऐसा लगता कि क्या हिन्दुस्तानमें सिर्फ अंग्रेज ही रहत हाने ? क्योंकि सरकारी अधिकारियों और गोरोंके सार्वजनिक और सामाजिक जीवनकी खबरें ही उसमें ज्यादातर आती थीं। मारपीट और हादसोंके जिक्र आते सभी मालूम पड़ता कि गोरी सड़क मोर्चे नेटिव लोगों का बासा समुद्र भी है। जिसमें आश्चर्यजनक या अनुचित जैसा कुछ भी नहीं कि अंग्रेजी अखबार बही बातें देंगे और गोरोंकी दृष्टिसे महत्त्वकी हों। अगर हम अपना जीवन विकसित करना चाहते हों तो हमें अपनी निम्नी दृष्टिसे जानकारी देनी चाहिये। मालूम होता है कि बंगाली लोगोंने यह कला कुछ-कुछ सीख ली है।

अपने बुतविवेचनमें हम अंग्रेजी पढ़ी हुयी दुनियाका ही खयाल रखते हैं। सरकार और अूमकी बरमुतें विदेशके साथ का व्यापार अंग्रेजी निता अदालते विद्वानोंका साहित्य और पत्रे-सिखे बर्यके सुख-दुख यही हमार बुतविवेचनक प्रमुख विषय हाते हैं। हिन्दुस्तानकी जनता हिन्दुस्तानकी कलाओं और कारीगर, किमानोंका जीवन गाँवोंकी स्थिति जमप्रचार, गरीबोंका गृहजीवन परिगणित जातियोंकी अङ्कन आदि राष्ट्रीय जीवनके प्रधान प्रश्नोंको आवश्यक प्रमानता हम देते ही नहीं। स्पानोय बुतपत्रका खेब भी अज्छा नमूना हमारे सामने नहीं है। हमार संवाददाता देहातोमें जात ही नहीं। बास्तवमें हासत तो भैगी होनी चाहिये कि प्रत्येक बुतपत्र बाँबों-के निवासियोंमेंसे नममाववासे कुछ संवाददाता छोले बुद्धे बुत

कलाकी धीरजके साथ शिक्षा दे और ग्रामीण जीवनकी चर्चा विम्वरस्पी से । जिस तरह हमारी समाजमें शहरवासी बुद्धिमानपर बैठते हैं और बेचारे ग्रामप्रतिनिधि अपनी स्वाभाविक विनय धारण कर दूर कोनेमें किसी जगह बैठ जाते हैं उस तरह अखबारोंमें भी लोकजीवनको अन्धकार में ही मिला जाता । और वह भी हमेशा नहीं मिलता ।

अब भी 'जब जागे तभी सवेरा' समझकर किसानों बुद्धिमानों कारीगरों मजदूरों स्त्रियों और बुराईकी स्थितिका महत्त्व समझकर अन्धकी पूर्वाभा दूर करनेके लिये अन्धों तैयार करनेकी दृष्टिसे अन्धके सवालकी तरफ ध्यान देनेका प्रयत्न पत्रकारोंको करना चाहिये । अबतक समाजसुधार और धर्मसंस्करण जैसे महत्त्वके विषयोंका विवेचन भी हमने मध्यम श्रेणीकी दृष्टिसे ही किया है । यह बुद्धिकी बात है ।

जैसे-जैसे पत्रकार ग्रामीण जीवनके विषय में अधिकाधिक लिखते जायेंगे वैसे-वैसे प्रचारकों अप्रदेशकों नेताओं और कूटनीतिकोंके लिये गाँवोंकी मुलाकात सेना साजिमी होगा । सक्रिय बीसा होनेके लिये पत्रकारोंके लेख स्थानीय रंगसे रंगे हुये होने चाहियें । अन्धमें स्थानीय अध्ययन और स्थानीय समभाव पूरी तरह होने चाहियें । 'सम्पादककी मजदूरी' लिखे हुये गोलमोल सामान्य सिद्धांतोंसे काम न चलेगा ।

अच्छी तैयारीके साथ अगर जिस दिशामें प्रयत्न होने लगे तो यह व्यवहार घाटेका नहीं साबित हो सकता जैसे लेख लिखकर कि जिन्हें पढ़कर लोगोंको भ्रम आये और शिक्षा-क्षुब्ध मनोवृत्ति हो, कुछ पत्रकारोंने पाठकवर्गकी अभिरुचि बिगाड़ दी है । करना जैसे बुद्धि-विवेचनको जिसमें जनताके हितकी चर्चा की गयी है आवश्यक पारिधमिक दिये बिना अमरता न रहेगी । फिर अखबार जब मरनेका चंघा सो हरगिज नहीं समझना चाहिये । जिम्ताफकी साक्षर, धर्मकी साक्षर, लोक-कल्याणकी साक्षर लोकमतके खिलाफ जाना भी पत्रकारके

लिये बुचित होता है। विदेशियोंके अस्मका वर्णन और अस्का निषेध लोकप्रिय हो सकता है। लेकिन अगर हम सामाजिक अन्यायों और कुरीतियोंके खिलाफ खड़े हो जायें तो लोग थिड़ भी खाते हैं। सुशामदेके खादि पाठक और ऐकक जैसा बीरकर्म क्यों करने चले ? किसी महान् प्रयायके खिलाफ अभिमन्यु जैसा कोखी बीर अकाकी असहाय लड़ता हो तो पत्रकारको अस्की बगलमें खड़ा रहना ही चहिये। प्रतिष्ठाकी जाति बहुत बार सुयोग्य किन्तु प्रतिष्ठारहित मनुष्यको दबाकर रखनेकी बुरा काशिष करती है। पत्रकार अगर हिम्मतवान होगा तो वह प्रतिष्ठाकी जातिको तोड़कर भी योग्यताका पुरस्कार करेगा।

जो बात व्यक्तिकी बही संस्थाओंकी। देशमें काम करनेवाली संस्थाओंके स्वरूपकी जानकारी प्राप्त करके अस्का परिचय लोगोंको कराना और संस्थामें सुन्त न बनें असिधिये अुनपर पहरा देते रहना पत्रकारका काम बसम्प है। देशमें जितना प्रत्यक्ष सार्वजनिक काम होता है अुसमें सहायक होना किसीमें बुराविवेचनाके समी फर्ज समा जाते हैं। वृत्तिविवेचन अगर यह फर्ज अच्छी तरह भदा करे तो अुसकी शक्ति अितनी बढ़ जाती है कि जिस तरह सरकारें और बिद्यापीठ योग्यताके लिये अुपाचियाँ देते हैं अुन तरह असबार भी कर सकता है। फिर असी लोकमान्यताके आगे राजमान्यता लुच्छ हो जाती है।

कोखी भी बिद्यास और नया सवाल हाथमें लेना हो तो पहले मासिक पत्रिकामें अुसका विवेचन करें और बादमें साप्ताहिक पत्र अुसे हाथमें लेलें। असा करनेसे बिषय टेढ़े रास्ते नहीं जाता और काम भी नहीं बिगड़ता। दैनिक पत्रोंके लिये अितनी मर्यादा भावदयक है कि जो आन्दोलन चल रहा होगा अुसके बारेमें ही वे लिखें।

हमारे यहाँ दैनिक वृत्तपत्रोंका सपादकर्मबल बिद्याल महों हुआ करता। बहुत बार राजा प्रधान, सेनापति सभी अक ही होते हैं। रोज अुठकर लेखपर लेख तो बनने ही पड़त हैं। जैसी

हास्तमें अमर समाजको बचवा जाना परोसा गया तो आन्दोलनमें जकर अब निकलेगा। हमारे यहाँ बिद्याभ्यासंगी स्त्रियोंने नियमित रूप से अखबारोंकी मदद करनेका रिवाज अभी तक ठीक ढंगसे प्रचलित नहीं किया है। जब एक अखबारके पीछे भिन्न भिन्न क्षेत्रोंमें विशेष योग्यता रखनेवाले स्त्रियोंका एक बड़ा मडल होगा और उसकी निरपेक्ष सेवा सतत मिलती रहेगी तभी हमारा वृत्तविवेचन पुस्ता और समृद्ध होगा।

जिस आशेषके सिलाफ लेखक जैसी बरील पेश कर सकते हैं कि पत्रकारोंमें विद्वान् बुजुर्गोंके बचनको मान देनेकी वृत्ति है ही कहाँ कि अूर्त हम सलाह दे ? असलमें देखा जाय तो सलाहकार या परामसदाता आग्रही सास वन जाय तो उससे काम न चलेगा और यह भी बर्दास्त नहीं किया जा सकता कि पत्रकार पंडितम्मन्य बनें। हमारा सामाजिक जीवन सराब हो गया है और वही हास्त हमारे सार्वजनिक जीवनकी भी हुआ है। संघर्षक्षितसे काम करनेके नियम अभी हमारे गले नहीं अूठरे हैं। नीतिके बन्धन शिथिल करनेमें अभिरुचिके अुच्च आदसोंको गिरानेमें और हर प्रकारके स्वच्छन्द या स्वीराचारको बढ़ करनेमें अब तक अखबारोंने कोजी कसर नहीं रखी है। जहाँ देखिये नये अखबार गुरू होते हैं थोड़ासा जीवनकलह चलाते हैं और पैग्युबेटों (स्तातकों) के बिद्याभ्यासंग की तरह थोड़े ही बिनामें डूब जाते हैं। फिर सारा अुत्साह पलापकी या गुटबदियोंमें ही रह जाता है। स्वतंत्र मीलिक कल्पनाओंका अकास होनेपर भी प्रतिभाका दाबा करनेवाला आवबरी साहित्य धितना कुछ बढ़ गया है कि अब साहित्य-सरसक-मंडलकी स्थापना करनेका समय आ पहुँचा है।

३

पत्रकार दो प्रकारके होते हैं। कुछ तो वे हैं जो अपने पत्र द्वारा जितनी वाङ्मयीन सेवा होती है अुतनेस सन्ताप मानकर बैठ जाते हैं। मतीलाल बोप, रामामय्य चट्टोपाध्याय और नटराजन

मिस वर्गके नमूने समझे जा सकते हैं। दूसरे यह हैं जो कमली देवकार्य करते समय अपने विचारोंको प्रकट करनेके साधनके तौरपर बखबार चलाते हैं। गांधीजी देवबन्धु, सासासाजपतराय लोकमान्य तिलक आदि मिस वर्गके प्रतिनिधि हैं। प्रथम वर्गके पत्रकार विविधताके अपासक होते हैं। प्रत्येकका कुछ-न-कुछ प्रमुख विषय होने पर भी वह सर्वांगी विचार-प्रचारके हिमामयी हुआ करते हैं। दूसरे वर्गके लोग कार्य-परायण होनेमें जहाँ तक हो सके अकाग्रता जाना चाहते हैं। दोनोंका उपयोग तो है लेकिन भिन्न दो आदसोंकी मिलावट करना उचित नहीं है। प्रथम वर्गके पत्रकार अगर चाहें तो अपने बखबारको सत्सुविका केन्द्र बनाकर एक सम्प्रदाय या बहुसंभाज तैयार कर सकते हैं। पुराने जमानेमें जो काम मन्दिर करते थे उसी काम तक पत्रकार अपने पत्रको बढ़ा सकता है। दूसरे वर्गके पत्रकार वेदसेवकोंकी अडिग सेना तैयार कर सकते हैं।

पत्रकारोंका तीसरा अंक बर्ग है—उनकाहके खातिर चाहे जिस मतका प्रचार करनेवालाका। अमेरिकन मीप्रोक अक स्कूलमें एक शिक्षकको नौकरी पर रखते समय विद्यार्थियोंके माँ-बापों ने उसे पूछा था 'क्या तुम पूरबी गोल है अँसा सिखाओगे या चौकीर है अँसा?' उसने जवाब दिया 'जिसमें या दूसरी किसी भी बातमें मेरा निजी तमिब भी आप्रह नहीं है, आपकी टाइन कौन्सिल बहुमतसे जो कुछ निश्चित करेगी सो पढ़ानेके लिये मैं तैयार हूँ।' अँसे लोगोंके हाथों क्या संभाजसबा होती होगी सो भगवान ही जानें।

पत्रकारोंके अलावा अँक नया वर्ग समाजमें पैदा होनेकी जरूरत है। अपने-अपने विषयमें या क्षेत्रमें जा-जो प्रकृति चल रही हो जो साहित्य प्रगट हुआ हो नये-नये आविष्कार हुअे हों निणय किये गये हों बाद पैदा हुअे हो नये-नय नमूनाका जम हुआ हो उन सबका वापिन संग्रह (अब्द-कोष) करनेका काम किसीकी अपने शिरपर सेना चाहिये। सामाजिक जीवनके

कच्ची भुपांग जरूर बीसे हैं जिनके लिये साप्ताहिक तो क्या, स्वतंत्र मासिक-पत्रिका भी नहीं चलायी जा सकती, मगर फिर भी जिनकी जानकारी मामूली अवसरोंमें यदुच्छया या भ्राम्य और बिखरी हुयी पड़ी रहे यह नहीं हो सकता । यदि कोई 'वार्षिक' चलाता हो तो कुछ लोग अपने विषयकी सामग्री उसके पास अवश्य भेज दें ।

साहित्यचर्चा करनेवाली नहीं किन्तु नये-धुराने सभी प्रकारके प्रश्नोंका सक्षिप्त परिचय करानेवाली ओकाश मासिक-पत्रिकाके लिये हमारी भाषामें अवश्य स्थान है । जिस तरहकी मासिक-पत्रिका बिद्यार्थियों और आम लोगोंके लिये बहुत ही कीमती साबित होगी और साहित्यका इतिहास लिखनेमें तो उसकी सेवाका मूल्य आँकना मुश्किल ही है । यह तो बहुत लोग जानते हैं कि मेजिनीकी साहित्यसेवा ऐसे प्रयत्नसे ही शुरू हुयी थी । ऐसा कुछ नहीं है कि ऐसी पत्रिकाओंमें सिर्फ अपनी भाषाके साहित्यका ही परिचय आय । हिन्दुस्तानके दूसरे साहित्योंको भी अचित्त मात्रामें स्थान दिया जा सकता है ।

सामान्य पाठक अगर अवसर और मासिक पत्रिकाओंके बाहर जाते हैं तो अल्पमासोंमें अंतरनेके लिये ही । जिस तरहकी हालत जबतक अपने देशमें है तबतक सारी दुनियाकी जानकारी उसके पूर्वापर-सम्बन्धके साथ देनेका प्रयत्न लोकशिक्षाकी दृष्टिसे अत्यन्त आवश्यक है । दुनिया कहाँ-कहाँ फँसी हुयी है वहाँ क्या-क्या चलता है प्रत्येक देशका रुखदर्द क्या है, दुनिया कहाँ तक आ पहुँची है जिसका जयाल हमारे लोगोंको होना ही चाहिये । जिसमें भी हम बड़ी हदतक पराबलबी रहेंगे ही । यह अपरिहार्य है । फिर भी अपनी दृष्टिसे प्रत्येक बस्तुकी मात्रा और महत्त्व निश्चित कर लोकशिक्षाका काम शुरू तो करना ही चाहिये ।

यह आपत्त्यकी ही बात है कि हमारे देशमें हमारा बृत्त विवेचन ज्यादातर अंग्रेजीमें ही चलता है । समर्थ सेसक अंग्रेजी

की ओर ही दौड़ते हैं और जिनके सिये यह सारा प्रचार चल रहा है उस जनताको जिसके फलसे वंचित रहना पड़ता है यह जितनी धर्म की बात है ! जिस धर्मकी तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता । अगर ध्याम बीचा भी जाता है तो सच्ची बात गले नहीं झुतरती जिससे अधिक दयनीय स्थिति और क्या हो सकती है ?

प्रादेशिक भाषाओंमें जो अखबार चलते हैं उनमें पीछे तैयारियाँ बहुत-ही कम होती हैं । कहा जा सकता है कि पत्रकारोंके लिये व्यर्थ धावपक जानकारी समझमें आये जैसे रूपमें जिनमें ही हो ऐसी किताबें हमारी भाषामें है ही नहीं । 'मिडियन मियर बुक' 'जेम्सबुल रजिस्टर' 'हूडिन हू' 'पिअर्स साजिक्सोपीडिया' 'कमन्सियस अटलास' 'हैंडबुक आफ कर्मसियल मिन्फमेटन' आदि सबोपयोगी सारी किताब भी देही भाषाओंमें अभी तक तैयार नहीं हुयी हैं । जिसलिये तथा अधिक अध्ययनक अभावमें देही पत्रिकाओं अथवा पत्रिकाओंकी बेबल नकल-बैसा बन गयी है ।

वृत्तविवेचनपर जीनेवाला और वृत्तविवेचनको पोषण देनेका ठोप करनेवाला एक भयकर रोग है 'विज्ञापन' । सार्वजनिक नीतिको भ्रष्ट करनेवाली और कौटुम्बिक अर्थशास्त्रको तोड़ बाँधनेवाली यह बुराही जितनी फैल गयी है कि 'नव-जीवन' द्वारा गांधीजीने उसका जो अितमा सक्त और सक्षम विरोध किया है उसका कुछ भी असर दूसरे अखबारों पर पड़ा हुआ दिखायी नहीं देता । अब में अखबारोंपर अितने ही विज्ञापन देसता हूँ सब मनमें विचार आता है क्या प्रमु-सेबाके सिये बोझी भूतमदेबमन्दिर बनाकर बादमें उसका लूट चराने के सिये उसके अहातेके कमरे चराबखानों और बेस्याओंकी किरायेपर देने जैसा ही यह काम नहीं है ?

पत्रकारका व्यवसाय या वृत्तविवेचन अपने माया है । जिस तरह बच्चे अपना धारिष्य

तक माँबाप या गुरुका अनुकरण करते हैं। उस तरह हमने अब तक विलायती 'अनैलिज्म' का अनुकरण किया। अमेरिकन ढंग दाखिल करनेकी भी कोशिश शुरू हो गयी है। क्या अभी तक अनुकरणका जमाना पूरा नहीं हुआ? क्या स्वतंत्र व्यक्तित्व लाने जैसा हमारे राष्ट्रमें कुछ है ही नहीं? अगर हमारे पास सांस्कारिक व्यक्तित्व है अगर हममें अस्मिता जागृत हुयी है तो उसे पहचाननेका उसे विकसित करनेका और प्रकट करके का समय क्या अब नहीं आया है? हमारा सवाल सिर्फ राजनैतिक नहीं है अगर वह सिर्फ राजनैतिक होता तो वह कभीका सुकस गया होता। जिस तरह दुनियाके लगभग सभी धर्म जिस देशमें अिकट्ठे हो गये हैं उस तरह दुनियाके लगभग सभी सवाल जिस देशमें अिकट्ठे होने लगे हैं हो गये हैं। अभी कुछ बाकी रहे होंगे तो वह भी आ जानेवाले हैं। चारों तरफ से पानीकी बाढ़ आनेपर बेघर और परेशान हुये लोग जिस तरह झूँची-से-झूँची जगह जोखते हैं उसी तरह दुनियाके सभी सवाल धर्म-धर्मके बीचके धाति-धातिके बीचके सामाजिक आर्थिक सिंहासबन्धी सभी सवाल जिस देशमें अिकट्ठे होने लगे हैं और उनका चर्चा करनेका कर्तव्य पत्रकारोंके सिर पर आ पड़ा है। जैसा तो है नहीं कि जो पत्रकार हुआ वह बिचारक भी हो गया लेकिन उसे हर सवालका स्वरूप और गंभीर्य ठीक-ठीक समझ तो लाना ही चाहिये और छेष्ट विचारकों-ने उनके लिये क्या-क्या सुझाये हैं या प्रयुक्त किये हैं उनको सूक्ष्मतासे अध्ययन करनेके साथ यथाशक्ति यथामति, उन्हें देशके सामने पेश करना चाहिये। हमारे जीवनमें और इतिहासमें धर्ममें और समाज रचनानेमें उसी दिशामें क्या-क्या उपयोगी है जिसकी जाँच-पड़ताल करके उस दुनियाके सामने रखना उनका काम है।

यह बात आसान नहीं है। दीर्घ अध्ययनसे मनुष्यमें बिहता आ जायगी, लेकिन शुद्ध और शुद्ध जीवनके बिना दिव्य दृष्टि

और अद्विग धृष्टा नहीं आती। आजका जमाना ही असा है कि जितना मुमकिन हो बढ़ जानेकी आवश्यकता है। पैतान लग लग सिरपर सवार हो चुका है। असे परास्त करनेके लिये देव सेनाके सज्ज होनेकी आवश्यकता है। असे अिस अवसरपर पत्रकारोंके सामने आज अेक बड़ा सवाल है कि वे कीनसा काम करें ?

अहमदाबाद पत्रकार-परिषद

नवंबर, १९२४

६

जीवन विकासी संगठन

आजकलका कोअी भी मनुष्य कीजिय असे स्वाभाविक रूप से ही अदरस असा लगता है कि हम सब किसी नये जमानेका नये युगका नये जीवमध्मका प्रारम्भ कर रहे हैं। हम सब ही मैसा कहते आये हों कि भारतवर्ष अेक है और हमारी सांस्कृतिक अेकता मुख्य-मुख्य बातोंमें स्पष्ट रूपसे सब ही दिसाअी देती हो फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि आजकल हम छोटे-बड़े गिरोहोंमें ही रहते आये हैं। विविधतामें अकता हमारी सस्कृतिकी आसियस है। अकिन हमने ता विविधताको अनेकधा फैलने दिया और अेकता साना लगभग भूल ही गये। अिसलिय समाजमें चलने होते हुअे भी हम कमजोर साबित हुअे। और हम सबका रून-सहम तथा विचारप्रणाली अेक-सी होते हुअे भी हम छिन्न-भिन्न हो गय।

भृत्यो स भृत्यमाप्नोति य मिह नानेव पश्यति ।

हमारे पितरोंके पिता ममराजने कमीका कहलिया है कि जो ब्यक्ति अपनेजीवनमें केबल विविधतामें ही पीछ पड़ता है वह जीवन-के अेक-के बाद अेक क्षेत्रमें भृत्यके समक शिक्जमें पँस जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें भी कहा है कि 'जो ज्ञानभेदभावको पोषण देता है और विविधताको ही पहचानता है वह समाजको प्रगतिको रोक रकता है। फिर कुछ लोग सा

वस्तुओंका तारतम्य न जानकर कुछ अकांगी वस्तुओंको ही सर्वस्व मानकर नासमझदारी करने लगते हैं। जैसे लोग समाजको अधिकाधिक नीचे ले जाते हैं। जो लोगअेक ही प्रान्तको सारा देश मानते हैं संस्कृतिके किसी अेक अंगको ही जीवनसर्वस्व समझने लगते हैं वह अपनी शक्तिका अुचित अपयोग नहीं कर सकते। किसी गाड़ीके सभी हिस्से-पुरजे सामुप्त हैं, लेकिन अगर वह अपनी-अपनी जगहोंसे तिसक गये हों या खीसे पड़ गये हों तो वह गाड़ी भला कैसे यात्रा कर सकेगी ?

अेक जमाना था जब वेदोपासना संस्कृतविद्या अधिकमार्ग विरक्ति आदि महान् सस्त्रोंके बसपरहम सांस्कृतिक अेकता प्रस्थापित कर सके। लेकिन जैसे-जैसे युगोत्कर्ष होता जाता है वैसे-वैसे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि समन्वयकारी तत्त्व अधिकाधिक व्यापक बनें। परधुरामके समय ब्राह्मण-संगठन या क्षत्रिय-संगठन स्वामाधिक होगा वेदकालमें आर्य-संगठन महत्त्वका हो गया होगा छत्रपति शिवाजी महाराज या राजा प्रतापके समयमें हिन्दुसंगठन अनिवार्य हुआ होगा लेकिन आज जो अिसमें कोसी शक्त नहीं कि भारतीय संगठन ही अेकमात्र युगधर्म है।

अिस तरहका संगठन अलग-अलग क्षेत्रोंमें कबका शुरू हो चुका है। अस्तित्व भारतीय संस्थायें तथा प्रवृत्तियाँ देशमें स्थान-स्थानपर दिखायी देती हैं। शिक्षा और साहित्यके बारेमें तो प्रत्येक प्रान्त अेकाकी बन कर सिर्फ अपना ही विचार करता आया है।

प्रान्तोंके लिहाजसे शिक्षाका अलग अलग प्रबन्ध हुआ सरकारी विद्यापीठोंकी स्थापना हुयी। अिन युनिवर्सिटियोंनि भारतीय तथा प्रान्तीय जीवन और संस्कृतिको कितना प्राधान्य दिया है यह तो हम देखते ही हैं।

अगर अैसा कहा जाय कि साहित्यके बारे में यहाँ संगठन अैसा कुछ नहीं है तो अुसमें कोसी गलती न होगी। साहित्यको

येक ही रस्सीसे बाँधना आसान नहीं। साहित्यका मुँह बंद करना मुहल होता है लेकिन प्रौढ़-साहित्य बचन जैसी चीज बर्दाश्त नहीं कर सकता। किसी भी सचकी वास्तविकस्थामें ही उसके ऊपर परामा अंकुश टिक सकता है।

साहित्यमें कितनी शक्ति है जिसकी अधिकाधिक प्रतीति मनुष्य-जातिको होती आ रही है। साहित्य एक प्रकारका भैरव्य है सामाजिक सेज है संकल्पकी अमोघ शक्तिकी सहायतासे मनुष्य चाहे जो भला-बुरा परिणाम निश्चित रूपसे ला सकता है। लेकिन यह वाधारी सलवार है। यह एक रसायन होनेके कारण जो कोभी जिस हजम करेगा उसे यह अजरामर बनायेगा लेकिन अगर जिसका दुस्प्रयोग किया जाय तो यह समस्त अणुछेद किये बिना न रहेगा। एक समय था जब लोग साहित्यका उपयोग मोलसाधनके लिए करते थे। आगे चलकर सत्ताधारी और पैसेवाले लोगोंके मनोविनोदके लिये साहित्यका उपयोग होने लगा। जिस जमानेक सम्बन्धमें देयनिकालेकी सजा पाये हुमे एक जर्मन यहूदी लेखकने कहा है—

“यह समय साहित्यकलाके लिये या साहित्यकारोंके लिये बड़ा कठिन था। समाजमें यह विचार दृढ़ हो गया था कि साहित्यकारके मानी हैं घरमें पालने योग्य एक गुणीजन। प्रत्यक्ष जीवनके साथ उसका कोभी सम्बन्ध न रहता था। साहित्यकार क्रुद्ध हो या समुष्ट, दोनों बातें अकेली थीं। उसके हृषिकार हजामे किये गये फायर या धुमाये हुआ पट्टेकी तरह थे। साहित्य विनोदका एक मुत्तुष्ट साधन समझा जाता था। जिससे अधिक प्रतिष्ठा उसकी न थी।

और साहित्यकार भी एक बात भूल गये कि सिद्धाचारकी गलत या कल्पनावैभव उनके धपेके लिए काफी नहीं है उसक लिये चारित्र्यकी आवश्यकता है। साहित्यकलापर यह भूल गया कि उस-उस समय लोगोंकी जो अमिराचि हड़ हो गयी हो उनका पोषण या उसकी सिद्धमत बनना धर्म नहीं बल्कि सत्य

यह धर्म सेनदेन करते कभी न हिचकिचायगा। जीनेके मानी ही है सेनदेन करना। जो देता और लेता है उसपर वह जीवन देवता प्रसन्न होता है। 'ददाति प्रतिगृह्णति नाम्ययं प्रसीदति' लेकिन देनेके मानी गुलामोंको तरह भुगी-कर, या भुमनिके तौर पर देना नहीं है, और लेनेके मानी भी फेंके हुए टुकड़े भिसारी की तरह अठाना नहीं है। दुनियामें समानभावसे सबके साथ बराबरीके व्यक्ति की तरह रहनेकी कला मानी चाहिये। यह साम्ययोग साधनके लिये ही आपसी सहकारकी कला हस्तगत करनेकी आवश्यकता है। हमारे देशमें प्रत्येक प्रान्तकी कुछ-न कुछ खासियत होती ही है। प्रान्तीय भेद स्पष्ट दिखायी देते हैं लेकिन संस्कृति तो प्रान्तिक अनुसार असग-असग नहीं हुआ करती। सगीतके किसी समूह और संपूर्ण रागमें जिस तरह आरोही और अवरोही स्वरमें भिन्नता होती है वृत्ति तरहकी भिन्नता हमारे विविध प्रान्तों तथा भुमके असग-असग वर्गों में है।

जिस समय राष्ट्रका आत्मविश्वास बिस्फुर भुड़ गया था उसमें किसी तरहकी हिंमत नहीं बची थी उस समय कुछ लोग विदेशियोंका केवल अनुकरण करनेका अपवेश देने लगे और कुछ भुनका विरोध करके कहने लगे कि पुराने मुर्दोंको मसाले में ढककर, भुनकी ममी बनाकर भुनकी पूजा करनी चाहिये। हमारे यहाँ यह झगड़ा बरसोंतक चला लेकिन बादमें सच्ची जागृतिका अुदय होते ही पुरानी पूजापर जीनेकी या दिव्यमें पैर होकर मिलनेवासी विदेशी खूराकपर गुजारा चलानेकी बिस्मृत आवश्यकता नहीं रही। अपनी जमीनको चरबा तथा बाहरका खाद देकर मयी फसल तैयार करना जरूरी है यह बात अकल-मद लोगोंके मनमें बैठ गयी। कष्टपूर्वक जमीनको जोतकर ताजी फसल सेनेसे ही राष्ट्र-जीवनके लिये आवश्यक सभी वित्त मिन्न मिल सकते हैं अितनी सारी बात भी हमारे गले अंतरत दो पीढ़ियाँ रह देखनी पड़ी। और किसीलिये अन्तरप्रान्तीय

संगठनकी ज़रूरत हमें यादतक न महसूस हुआ। स्वावलंबन का प्रयत्न करते समय आपसी सरकार अच्छा मासूम होने लगती है। परावलंबनमें केवल माय-निष्ठा पूरी तरह हो तो काफी है। अब जब कि हम निजी अनुभवका महत्त्व समझकर पराक्रम या पुण्यार्थ करने लगे हैं, उस समय अकेलदूसरेकी सहाह लेनेकी ज़रूरत हम महसूस करने लगे हैं।

मनुष्य प्रयोगवीर न हों अनुभवपरायण न हा तो कुछ कर्मक सस्मात्स्व पूर्ण पूर्वतर कृतम् मिस तरहकी पूर्वानुसारी बृत्तिके वह धावी बन जाते हैं। उस जमानेमें हमने बाहरके गुद बहुतेसे बिम्बे लेकिन आत्म-गुरुकी शोध नहीं की।

राजनीतिमें पहले-महल सन् १८५७ जीसबीमें हमने पुराने ढंगसे एक सीधी सारी बग़ावत कर देखी। उसके बाद राज्य कर्ताओंका इतिहास पढ़कर अन्हीका अनुकरण शुरू किया। पहले हम माना करते थे कि लिबरल पक्षके लोग अच्छे हैं। अन्हीके हाथों हमारा बस्याप होनवाला है। हमें अब अनुभव हुआ कि यह आधा दुराशा है, तब हमने मजदूर-पक्षका दामन पकड़ा। उसी जमानेमें फ्रांस अिटली अमरीका आदि देशोंका इतिहास पढ़कर उससे प्रेरणा पानेकी हमने कोशिश की। जितनेमें स्वकी प्रगतिसे सारी दुनिया बकाबाँध हो गयी और हमें मासूम हुआ कि अम देशमें जो अन्ति हुआ वह इतिहाससिद्ध धास्नकी मजबूत बुनियादपर खड़ी हुआ है।

गुरुमंत्र बाहे जिसमें लिया जाय, लेकिन अगर वह आत्म सात् न किया जा सके तो उससे सामर्थ्य प्राप्ति नहीं हो सकती। साहित्यके बारेमें भी अनुकरण तथा अंधार लेनेकी कुछ मर्यादा होती है। किसी ग्रन्थका स्वभाषामें अनुबाध किया जाय और अगर लोग अने न समझ सकें तो भूतसे क्या फायदा ? और समझमें आवे तो भी अगर सहानुभूति न पैदा हो वह किसीका आकर्षक न हगे, तो अने व्यर्थ हो समझना चाहिये। फर्ज कीजिये कि वह आकर्षक भी बन गया लेकिन अगर वह

मानसमें प्रवेश न करे बिचारप्रणाली पर असर न करे, लोगोंके जीवनमें या खुनकी मिजी मापामें न अतरे तो उसे मिष्कल ही समझना चाहिये। साहित्यकी धारित अद्भुत है लेकिन वह रसायन जैसी है। केवल साहित्यपठनसे या दूसरोंसे आदर्श और अनुभव अधार लेनेसे ज्यादा-से-अध्यादा साहित्यक्षेत्र समृद्ध हो जायगा लेकिन खुसमेंसे जीवन-साफल्य शायद ही निष्पन्न होगा।

जब जीवन समृद्ध व्यापक और गभीर होगा तभी ऊपरके गुण साहित्यमें उठरेंगे। खोष-खोज पराक्रम प्रवास व्यापार हुनर कलाकौशल निरीक्षण परीक्षण मयनिर्मिति आवि वातों-में जब समाज मोर्चेपर होता है जब खुसकी महत्वाकांक्षा अतृप्त हो जाती है और कर्तव्यबुद्धि मेदक होती है तभी साहित्य जोरदार बनता है।

बिस ठरहका पोपण साहित्यको अब मिसने लगा है लेकिन जीवनको भुलाकर, जीवनसे द्रोह करके केवल साहित्यका पोपण हमें नहीं करना है। जीवनके सिधे साहित्य है। जीवन मेंसे साहित्यका अद्गम है और साहित्यका फल भी सरकारी तथा समर्थ जीवन ही है। विविधतामेंसे अक्षय प्रस्थापित करनेका हमारा जो जीवनमन्त्र है उसे साहित्यमें भी स्पष्ट तथा पूर्ण रूपसे व्यक्त करना है। और मिसकिये सर्वसमन्वय ही हमारा ध्यान मंत्र है।

कुछ लोगोंको असा लगता है कि अनेक चीजोंकी लिचड़ी बमानेसे समन्वय हो जाता है अब कि दूसरे कुछ लोगोंका सवाल है कि किसी एक विशेष वस्तुको स्वीकार करके खुसका विस्तार करना और बाकीकी वस्तुओंका तिलांजलि देना ही अकेलाका अकेला साधन है। लेकिन यह दोनों दृष्टियाँ भ्रममयी हैं। बिना विविधताके अक्षयमें कुछ अर्थ ही नहीं। विविध घटकोंका खुसका अपना स्वत्व अचित मात्रामें न रखा जाय तो फिर समन्वय ही किसका करें? यह सही है कि स्वरस-रक्षा और समन्वय अके

दूसरेके विरोधी तत्त्व माकूम होते हैं वह भासानीस मेकदूसरेमें नहीं मिलत, लेकिन समाजको योग्य साधना करके यह समन्वय पक्षि अपनाती होती है। कभी भूलें होंगी कभी पीढ़ियोंका बलिदान देना पड़ेगा लेकिन स्वल्प-रक्षा और समन्वय दोनोंकी एक साथ अपासना हो चाय तो बसमेंसे जीवनके दिव्य स्फुटिलग निकल बिना कभी नहीं रह सकते। जिसका दूसरा नाम है जीवन रसायन।

सिर्फ खिचड़ी बनानेमें कभी-कभी अनिष्ट चीजें ही पैदा होती हैं। बाजारमें सभी वस्तुमें खेचरित होती हैं, लेकिन दूकानको कोभी घर नहीं कहता। पुस्तकोंकी दूकानको पुस्तकालय नहीं कहा जा सकता।

जैसा कि हम ऊपर कह गये हैं जीवन ही साहित्यका क्षेत्र है। जिसलिये जीवनके सभी क्षेत्र हमारे चिन्तनके विषय हैं। लेकिन जिन क्षेत्रोंमें से मेक बहुत ही महत्वके और व्यापक क्षेत्रको हम फिलहाल जान-बूझकर अलग रखनेवाले हैं। राजनीतिकी मुख्य भूमिकापरसे चर्ची जानेवाली राजनीतिकी हमारे कम्पित साहित्यमें कोभी भाषा नहीं है। लेकिन वर्तमान परिस्थितिमें यही मिष्ट है कि हम अपनी भावनाओं मौन-द्वारा व्यक्त करें। आज देशमें सबको खेचल लानेकी बहुत जरूरत है। वर्तमान आरपमिमान प्रान्तामिमान और राजनीतिक पक्षमें आवि बातों-से हमारी जनोबुत्तिमां बितनी प्रलुब्ध, संकुचित और बुद्धिबिमुख हो जाती है कि बससे सांस्कृतिक संगठन अधिकाधिक मुदिकल हो जाता है। जहाँ दिन सोलकरवात नहीं की जा सकती वही मौन रचना बच्छा है। दूरते दूरते या किसीके दबावमें आकर झूठ-सचका मियन करनेमें या टेढ़ ढंगसे सोलनेमें सत्यका पालन नहीं है, सामध्य नहीं है तेजस्विता नहीं है और मानसिक सन्नाप तो हरगिज नहीं है। और परिणाम देकत जाओ तो दून्य ! जिन सब कारणोंसे हमने अपनी प्रबुत्तिको राजनीतिमें बलिष्ठ रचना ही पसन्द किया है।

अर्थात्क हो सके व्यक्तिगत आलोचन भी टालनेका हमारा निश्चय है। अहाँ सभी स्खलनशील हों वहाँ कौन किसका अपहास करे। पहला पत्थर कोममारे ? फिर व्यक्तिगत टीका करनेसे न टीका करनेवालोंको लाभ होता है न सुधरता टीकाका विषय हुआ व्यक्ति। वह या तो बिड़ जायगा या नाभुम्भीव होकर निराश हो जायगा। परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन अधिकाधिक नीचे गिरता जाता है ऐसा सार्वत्रिक अनुभव है।

कुछ लोग कहते हैं कि साहित्य जीवनका समालोचन है। बात सही है लेकिन अूसमें सारा सत्य नहीं आ जाता। साहित्य जीवनकी पुनर्वटना है मधसर्जन है और कभी-कभी वह जीवन प्रेरणा भी होता है। यह सब आदर्श हमारी दृष्टिके सामने हैं।

भारतीय साहित्य-संगठनका मुख्य कार्य तो राष्ट्रभाषाद्वाराही चलेगा। लेकिन अूसका सन्देश अपने-अपने प्रान्तोंमें अपने-अपने ढंगसे पहुँचानेका काम प्रान्तीय भाषाओंको ही करना है। सब मिलकर अेक ही पंक्तिमें भोजन करने बैठे हों तो भी प्रत्येक व्यक्तिको अपनी मूल स्वास्थ्य और अभिव्यक्तिका विचार करके यह निश्चित करना पड़ता है कि क्या खाना है किखना खाना है और किस तरह खाना है। जिसी तरह प्रान्तीय भाषाओंको करना पड़ेगा।

और सब कुछ देना हो तो भी देते समय सबरीकी तरह हर बेर अच्छी तरह देख भासकर समर्पित करना अच्छा है। दूसरे अेक ढंगमें भी सोचा जा सकता है। हम 'महाराष्ट्रीय साहित्य' या 'भारतीय साहित्य' जैसे शब्दोंका अिस्तेमाल करते हैं। 'महाराष्ट्रीय संस्कृति' 'भारतीय संस्कृति' जैसे शब्दोंका भी हम प्रयोग करते हैं। लेकिन साहित्य या संस्कृतिका अकल्प बनानेका हमने कभी प्रयत्न किया है ?

'मराठी बोलनेवाले सभी महाराष्ट्री हैं यह परिभाषा तो ठीक है। लेकिन मराठी बोलनेवाले हम सब अेक हैं अक-दूसरे के हैं अिस प्रकारकी वृत्ति जागृत करनेके लिये या अूस दृढ़ करनेक

सिध्दे क्या हमने साहित्यमें कोभी प्रयत्न किया है ? अकेल-दूसरे की टीकाटिप्पणी करके अकेल-दूसरेके दोष बाहिर करके हमने अकेल-दूसरेकी संवा की है ऐसा सायद हम मानते होंगे लेकिन ऐसा करनेसे क्या हृदयोंका मिलन हुआ है ? क्या ऐसा बिस्वास अकेल-दूसरेके मनमें पैदा हुआ है कि संकटके समय अपनी मदद के सिध्दे कोभी-न-कोभी जरूर दौड़ा आयेगा ? क्या यह अर्थ हमारे यहाँ हुआ है कि 'महाराष्ट्रका अभिमान' के मानी सिफ 'मैं और मेरा' का ही अभिमान नहीं बल्कि सभी महाराष्ट्रियोंके प्रति अपनापन सबके प्रति प्रेम है ? ऐसी भावना हो या न हो अगर वह पैदा करनेकी धुन हो सभी भारतीय साहित्यके संगठन की कल्पना और आम्ना हममें उत्पन्न होनेवाली है ।

नवंबर, १९९१

१०

रस-समीक्षा

विचार करनेसे मालूम होगा कि साहित्य सगीत और कला तीनों भाषनाके ही क्षेत्र होनेसे तीनोंके अन्दर समानेवासी बस्तु अंक ही हो सकती है अतः हम रस कहते हैं । साहित्याचार्योंने रसवर्षा तो अनेक प्रकारसे की है । सगीतमें यह दस्ता जाता है कि राग और तालके अनुसार रसमें परिवर्तन होता जाता है । चित्रकलामें नवरसके भिन्न भिन्न प्रसंग चित्रित किये जाते हैं । रेखाओंकी सबल्यता द्वारा तथा वर्णोंके सादृश्यमें रस व्यक्त किये जाते हैं । मूर्तिविधान म्मापत्य नृत्य भादि विविध कलाओं द्वारा भी अन्तर्में रसोंकी ही अभिव्यक्ति करनी होती है । लेकिन अब तक साहित्य सगीत और कलाओंकी दृष्टिसे—अर्थात् जीवनकलाकी समस्त यानी सार्वभौम दृष्टिसे—रसका विवचन किसीने नहीं किया है । साहित्याचार्योंने जो विवचन किया है उसे स्मोकार करके और भुसका संस्करण करके भूमे व्यापक बनानेकी जरूरत है ।

यह जरूरी नहीं है कि पूर्वाचार्योंने जिन नौ रसोंका वर्णन किया है उनके वही नाम और जितनी ही संख्या हम मान लें । अब जिस बातकी स्वतंत्रतापूर्वक भीमांसा होनी चाहिये कि सत्कारी जीवनमें कलात्मक रस कौन-कौन-से हैं ।

हमारे यहाँ शृङ्गारको रसरान कहा गया है । उसे जयपूजाका मान है । लेकिन वास्तवमें वह सर्वोच्च रस नहीं कहा जा सकता । प्राणिमात्रमें नर-मादाका एक दूसरेके प्रति आकर्षण होता है । प्रकृतिने जिस आकर्षणको अतना अधिक अनुभावकारी बना दिया है कि उसके जाने मनुष्यकी सारी होशियारी सारा संयम और सब विवेक नष्ट हो जाता है । हम यह सवाल यहाँ न छेड़ें कि जिस आकर्षणको सुतेजन देना आवश्यक है या नहीं । पर जिस आकर्षण और प्रेमके बीच जो सम्बन्ध है उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये । पहले हमें जिसका निश्चय कर लेना चाहिये कि नर-मादाके आपसी आकर्षणमें एक-दूसरेके प्रति यत्नार्थमें प्रेम होता है या अहंप्रेमकी तुष्टिके साधनरूप ही वह एक-दूसरेकी तरफ़ देखते हैं । प्रकृतिकी रचना कुछ ऐसी है कि काम-वासनाका प्रारम्भ अहंप्रेमसे होता है । लेकिन अगर यह काम धर्ममार्गसे चले तो वह विशुद्ध प्रेममें परिणत हो जाता है । विशुद्ध प्रेममें आत्मबलिदान सेवा और आत्मबलिदानकी ही प्रधानता रहती है । कामको विकार कहा गया है । प्रेमको कोभी विकार नहीं कहता क्योंकि उसके पीछे हृदयधर्मकी अदास्तता होती है । यहाँ धर्मके मानी रुद्धिधर्म या शास्त्रधर्म नहीं किन्तु आत्माके स्वभावके अनुसार प्रकट होनेवाला हृदय-धर्म है ।

शृङ्गार मूलतः भोगप्रधान होता है । लेकिन हृदय-धर्मकी रासायनिक क्रियासे वह भावना प्रधान बन जाता है । यह रसायन और परिणति ही काव्यका, कलाका विषय हो सकती है । प्राचीन नाट्यकारोंने जिसतरह नाटकोंमें रगमंथपर भावन का दृश्य दिखानेका निपेय किया है उसी तरह भोगप्रधान

शृङ्गार चेष्टाओंका भी खुल्लमखुल्ला बतलानेकी मुमानियत कर दी है। यह तो कोजी नहीं कह सकता कि नाट्यसाधनोंको छाने-पीनेसे या रतिमुखसे घुणा थी। देह धर्मके अनुसार जिन वस्तुओंके प्रति स्वाभाविक आकर्षण ता रहेगा ही पर बैसी घटनाओं और जैसे आकर्षण कलाका विषय नहीं हो सकते। यह कहनेके लिये कि कलाकृतियोंमें उस वस्तुको स्थान नहीं होना चाहिये किसी प्रकारकी वैराग्यवृत्तिकी आवश्यकता नहीं है। उसके लिये सिर्फ सस्कारिता हो तो काफी है।

प्रेमरसका सुद्ध वर्णन हमें मधुभूतिके 'अनुरागचरित्र'में मिलता है। 'शाकुन्तल'में प्रेमका प्राथमिक शृङ्गारिक स्वरूप भी है और अन्तका परिणत विमुक्त रूप भी। वास्तवमें देखा जाय तो प्रेमको ही रसरसको अपाधि मिलनी चाहिये। शृङ्गारको तो केवल उसका आलम्बन-विभाव कहा जा सकता है। शृङ्गारके वर्णनसे मनुष्यकी चित्तवृत्तिकी आसानीसे अदीपित किया जा सकता है। किसीलिये सब वक्तों और सब जमानोंमें कलामात्रमें शृङ्गारको प्रधानता प्राप्त हुयी दिखायी देती है। जैसे अनुभूतिमें बसन्त बस रसोंमें शृङ्गार अनुमादकारी होता ही है। जिस तरह लोगोंकी या व्यक्तिकी खुशामद करके बातचीतका रस बढ़ी आसानीसे निभाया जा सकता है उसी तरह शृङ्गार रसको जागृत करके बहुत थोड़ीसी पूँजीपर कला कृतियोंको आकर्षक बनाया जा सकता है।

सच्चे प्रेमरसमें अपने व्यक्तिगतको भुलाकर दूसरेके साथ सामान्यका अनुभव करना होता है। किसीलिये प्रेमरसमें आत्म-बिलोपन और सेवाकी प्रधानता होती है। प्रेम आत्माका गुण है किसीलिये वह नेहपर विजय प्राप्त करता है। प्रेम ही आत्मा है। सभी प्रेमियों भक्तों और वदानी दर्शनकारोंने यह बात स्पष्ट कर दी है कि अमर प्रेमस आत्मा मित्र है ही नहीं। औररस भा अपने गुद्ध रूपमें आत्मविकासका ही सूचन करता है। सामान्य स्वस्थ स्थितिमें मनुष्य अपने आत्मतत्त्वकी

धुत्कटताका अनुभव नहीं करता। क्योंकि वह वेहके साथ अक्षय्य होता है। लेकिन जब असाधारण अवसरके कारण खरी कसौटीका वक्त आ जाता है तब मनुष्य अपने शरीरके बन्धनों से मुक्त पड़ता है। इसीमें वीररसकी उत्पत्ति है।

प्रतिपक्षीका द्वेष उसके प्रति क्रूरता उसके विरुद्ध अहंकारका प्रदर्शन आदिमें वीररस समाया हुआ नहीं है। लोकव्यवहार में कभी बार यह सब हीन भावनाओं वीरकर्ममें मिली हुई होती हैं। वैसा होना कभी-कभी अपरिहार्य भी हो जाता है। लेकिन यह जरूरी नहीं कि साहित्यमें अन्हें स्थान हो ही। साहित्य वास्तविक जीवनका कोवी संपूर्ण फोटोग्राफ नहीं हुआ करता। साहित्यमें वही चीजें लानी हाती हैं जिनकी तरफ ध्यान खींचना आवश्यक है। मिष्ट वस्तुको आगे लाना और अनिष्ट वस्तुओंको दबा देना साहित्य और कलाकी आत्मा है। जिस पुरस्कार और तिरस्कारके बिना कलाकी संभावना ही नहीं होती। वीररसके लिये जो कुछ हानिकर हो उसे साहित्यमेंसे निकाल देना चाहिये। तभी वह साहित्य कलापूर्ण होगा।

लोक-व्यवहारमें वीररस अमूर्त आर्यता चाहता ही है। पशुओंमें शौर्य होता है पर वीर्य नहीं होता। जानवर जब ओस में आकर आपसे बाहर हो जाते हैं तब वे आपसमें अघाघात छड़ पड़ते हैं। लेकिन उनमें डरका तनिक भी प्रवेश हो जाय तो घुम दबाकर भागनेमें अन्हें बेर नहीं लगती। भयकी लज्जा तो वह जानते ही नहीं। भयकी लज्जा आत्माका गुण है। जानवरोंमें वह नहीं हुआ करती। आवेष्ट हो या न हो तीव्र कर्तव्य-बुद्धिक कारण अथवा आर्यत्वके विकसित होनेसे मनुष्य भयपर विजय प्राप्त करता है। आत्मस्थ सुखोपभोग भय स्वार्थ भिन सबको त्यागकर, अमर्ही अचानेकी बृत्तिसे मुक्त हो आत्म वसिदानके लिये जब मनुष्य तैयार हो जाता है तब वह जब पर—अपनी वेहपर विजय प्राप्त करके आत्मगुणका अत्युत्कर्ष बताता है। वैसा वीर-कर्म वैसी वीर-बृत्ति देखने या सुननेवाले ने

हृदयमें भी समान भाव-समभावको जागृत करती है यही वीर रसका आकर्षण और सफलता है ।

वीरोंका वीरकर्म देखनेके बाद—हमारी बाजूमें वीर या वीर-समूह खड़ा है जिसलिये हम सही-सकामत है अब भयका कोई कारण नहीं—जिस तरहका सन्तोष भी दुर्बलों तथा भयानकोंको मिलता है । जिसे वीर रसका कोई सर्वोच्च परिणाम या फल नहीं कहा जा सकता ।

जिस जमानेमें मनुष्य अपनी देहका मोह करनेवाला फूक-फूककर कदम रसमेवाला वीर घर-घुसा बन जाता है उस जमानेमें वह वीरोंका वसान करके मुझे अभाङ्कक या अुनकी बहादुरीकी तारीफ़क पुल बाँधकर अुनके हाथों अपने लिये सुरक्षा प्राप्त करता है । असंके समाजमें वीररसकी वीरकाव्यकी जो चाह होती है प्रतिष्ठा होती है उस परसे यह न समझ लिया जाय कि उस समाजमें आर्यत्वका अुत्कर्ष होने लगा है । जब संवत्सरीमें लोकमान्य तिलकपर मुकद्दमा चल रहा था तब वहाँके मिल-मठदूरनि बड़ा बग किया था । अुनका वह तूफ़ान देखकर मध्यम बग तथा व्यापारी वर्गके कभी लोग धरोंके अन्दर छिप बैठे । जब उस आन्दोलनका दमन करनेके लिये सरकारी फौज आयी तब उसे देख वे लोग मारे खुशीके जयध्वनि करने लगे और अपने हाथोंके कमाल अुछालने लगे । फौजके अुन वीरोंका स्वागत-सम्मान करते समय अुनके मुहसे जो वीर-गान निकला उससे यह नहीं कहा जा सकता कि उस समाजके वीरत्वकी बुद्धि हुई । यह आँखों दली घटना है जिसलिये उसका असर दिलपर कायम रह गया है ।

वीररसकी जड़ अगर वीर करें तो वह भेद घात है और रसजया आश्रय चाहनेवाले करें तो वह दूरी बात है । वीर हमेशा वीररसको गुंथ रसमेकी फिर रसता है जबकि आश्रयपारायण लोग प्राण प्राण-ये सब हमसे आर्य वृत्तिका विवेक रस बिना रसजयतकि प्रति

असके सभी गुणदोषोंको जूझजल रूपमें ही देखते हैं ।

वीरवृत्तिसे ही वीरवृत्ति जागृत होती है । जिसका कोई अलाप न देखकर आर्य धर्म-कारोंने जिसकी मर्यादा याँव दी है कि 'मरणान्तानि वैराणि' । शत्रुके मर जानेके बाद असकी देहको लात मारना असके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करना असके आश्रितोंको सत्समाधुनकी स्त्रियोंका अपना बनाना यह सब अके आर्यवीरके लिये शाभा देनेवाला नहीं है । वीर पुरुषोंने यह देख लिया था कि जिस तरह के बर्तावसे मरे हुए शत्रुका अपमान नहीं होता बल्कि अपने वीरत्वको ही बढ़ा लगता है । आर्य साहित्याचार्यों कवियों और कलाकारोंने यह कह रखा है कि अगर बुझनी करनी हो तो जैसे आवमीके साथ करो जो अपने साथक हाँ, और उसे हरानेके बाद असकी कद्र करके असकी प्रतिष्ठाको बनाये रखो और जिस तरह अपना गौरव बढ़ाओ ।

वीरवृत्तिका परिषय मनुष्यके ही विरोधमें नहीं दिया जाता बल्कि सृष्टिके कृपित होनेपर भी मनुष्य अपनी अस वृत्तिको बिकसित कर सकता है । जब मेरा शत्रु तलवार निकालकर मेरे सामने खड़ा हो तब केवल आत्मरक्षाकी दृष्टिसे भी मुझे अपनी सारी शक्तिको अकजित करके असका मुकाबला करना पड़ता है । अस वक्त अगर मैं रुझाऊँ बलि न रखूँ तो जार्ज कहाँ ? सिंहगढ़की दीवारपर खड़कर अहमभानुके साथ संग्राम करनेवाली तानाजीकी क्रौञ्च जब हिम्मत हारने लगी तब तानाजीके मामा सुर्याजीने दीवारपरसे नीचे अतरनेकी रस्सियाँ काट डाली । अमरीका पहुँचनेके बाद स्पेनिश वीर हुमेंटो कॉर्नेज ने अपने जहाज जला दिये । जिस तरह पीठ फेरना ही जब असंभव हो जाता है तब आत्मरक्षाकी वृत्ति वीरवृत्तिकी मदद करने आती है, और जिसे अपनी जान ज्यादा प्यारी होती है वही उसे मौकेपर अधिक धूर बन जाता है ।

लेकिन जब कोई आवमी पानीमें डूब रहा हो या जलते हुए घरके अन्दरसे किसी असहाय बच्चेकी चीख सुनायी दे

रही हो तब अपनी जानके खतरेका तनिक भी खयाल किमे बगैर कोभी सेबस्वी पुख्त हृदय धर्मसे बफागार रहकर पानी या आगमें कूद पड़ता है। तब वह वीरवृत्तिका परम व्युत्कर्ष प्रकट करता है। जो व्यक्ति माफी माँगकर जीनेकी अपेक्षा फौसीपर लटकना ज़मावा पसन्द करता है या करोबो रूपोंकी कालबके बसमें न होकर केवल 'यायबुद्धि'की ही पहचानता है वह भी अलौकिक वीरत्वका ही परिचय देता है। सारी दुनियाका चाह जो हो जाय, पर अन्तरात्माके नादसे ताँ में हरगिज बबफा न होऊँगा—बिस तरहकी वीरवृत्ति बिसके लिये स्वाभाविक होती है वह वीरेस्वर ही है।

किसीकी बहु-बेटी या स्त्रीका अपहरण करते समय भी कभी गुडे-बदमाश बिकारके बस होकर असाधारण बहादुरी दिखाते हैं। बड़े-बड़े डाकू भी जान हथेलीपर रखकर धरोंमें सँघ लगाते हैं या लूटमार मचाते हैं और पकड़े जानेपर पुलिसके आदमी अनपर प्राथान्तिक समयातमा डाँवें तो भी अपने पक्षपातका मैद नहीं बताते। अूनकी यह शक्ति लोगोंमें आश्चर्य और तारीफ़के माव बकर पैदा कर सकती है लेकिन प्राथान्तिक लोगों का अपहरण या परस्त्रीका अपहरण करनेकी नीचबुत्तिसे प्रेरित बहादुरीकी कोभी आर्यपुख्त कह नहीं कर सकता। कुछ डाकू बड़े-बड़े डाकूके डालबर प्राप्त होने वाले धनका एक भाग आस पासके प्रदेशके गरीब लोगोंमें बाँट देते हैं और बिस तरह सोकरप्रिय बनकर अपनेको पकड़नेकी कोशिश करनेवालोंके छक्के छुड़ा देते हैं। कभी-कभी ऐसे डाकू और लुटेरे प्रख्यात समाज कटक लोगोंका नाश करके, अूनका सर्वस्व लूटकर गरीबोंको भयमुक्त करते हैं। इसलिये भी कृपण जनता ऐसे लोगोंकी सामान्य दुष्टताको भूलकर अूनके गुणोंका बखान करमे लगती है। यह सब चाह जितना स्वाभाविक क्या न हो, फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि बिससे समाजकी उत्थिति होती है। श्रीरामचन्द्रजीकी यह मुक्ति कि

कवि चरण और शायर अलग होते हैं और अपनी रसाकी तलाशमें रहनेवाले कायर तथा आश्रित अलग ।

पुराने जमानेकी वीरकथाओं हम जरूर पढ़ें आदरके साथ पढ़ें, लेकिन उनमेंसे हम पुरानी प्रेरणा न लें, हीन सन्तोष हमें त्याग्य ही लगना चाहिये । जीवनने वीर्यका नया आदर्श स्वतंत्र रूपसे विकसित करके उसके लिये आवश्यक पोषक तत्व पुरानी वीरकथाओंमेंसे जितने मिल सकें उन्हें पुनः पुनः हम जरूर मिस्तेमास करें । लेकिन वीररसक पुराने कूर या जीवनद्रोही आदर्शोंमें हम फिस्सक न जायें । हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि अगर जीवनमेंसे वीरता चली गयी तो वह असी क्षणसे सबने लगेगा और अन्तमें एक भी सद्गुण न बच पायगा ।

वर्तमान युगके कलाकारोंके अग्रणी श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरको एक बार जापानमें एक असा स्थान दिखाया गया जहाँ दो वीर लड़ते-लड़ते कट भरे थे । उस स्थान और घटनापर अपनी प्रतिमाका प्रयोग करके काशी कविता छिन्ननेके लिये मुनसे कहा गया । कविवरने वहाँ जो चरण छिन्न दिये वह भारतवर्षके मिथान तथा मानवजातिके अधिप्यको शोभा देनेवाले थे । मुनका भाव यह है—

“जो माझी गुस्तेमें पागल होकर अपनी मनुष्यताको भूल गये और मुझोंने धरती माताके वलस्यतपर एक-दूसरेका खून बहाया । प्रकृतिने यह देखकर मोसके रूपमें आसू बहाये और मनुष्यजातिकी भिन्न रक्तरमित लज्जाको हरी-हरी दूबसे ढाँक दिया ।”

दान्तिप्रिय, अहिमापरायण सर्वोदयकारी समन्वयप्रेमी संस्कृतिका वीररस त्यागके रूपमें ही प्रगट होगा । आत्मबिलोपन, आत्मवर्णिदान ही जीवनकी सच्ची वीरता है । उसके असंख्य भव्य प्रसंग कलाके भव्य विषय हो सकते हैं । ऐसे प्रसंग कलाको अग्रत करते हैं और जनताको जीवन-दीक्षा देते हैं । मैंने अभी जिस बातकी जाँच नहीं की है कि आजके कलाकार

असि पहलूको विशेष रूपसे विकसित करते हैं या नहीं; लेकिन जितना ती में जानता हूँ कि अगर भविष्यकी कला अुस दिशामें गयी तो निकट भविष्यमें वह असाधारण प्रगति कर सकेगी और समाज सेवा भी अुसके हाथों अपनी आप होगी ।

अब भवभूतिने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि 'रस अेक ही है, और वह है करुणरस' वह अनेक रूप धारण करता है तब अुसमें करुण शब्दको अुतना ही व्यापक बनाया जितना कि कला शब्द है । हृदय कोमल बने अुन्नत बने, सुहृदवेदी बने या अुदात्त बने वही काश्यपकी छटा ती आयेगी ही । काश्यपकी समभावना या समवेदना सार्वभौम है अुसके द्वारा हम विश्वात्मैक्य तक पहुँच सकते हैं । करुणरस सधमूख रससम्पाद है । लेकिन यह आवश्यक नहीं कि करुणरसमें शोककी भावना होनी ही चाहिये । वात्सल्यरस शान्तरस और अुदात्तरस कलाके अुबे-अुबे पहलू हैं । जिस तरह नदियाँ सागरमें जा मिलती हैं अुस तरह अन्य सब रस अंतमें जाकर करुणरसमें बिलीन हो जाते हैं । जिन सब रसोंके सिम्ये अेक मित्रने नाम सुझाया है 'समाहित रस' अर्थको देखते हुअे यह नाम बिल्कुल अेक मारुम होता है । लेकिन भाषामें यह सिक्का बस सकेगा या नहीं जिसमें एक है । वात्सल्यमें देखा जाय ती सभी रसोंकी परिणति योगमें ही है । याग अर्वात् समाधि-समाधान-साम्या-वस्था सर्वात्मैक्यभाव । कलामेंसे अंतमें यही बात निकलेयी । कलाका साध्य और साधन यह योग ही है । दुर्मात्म्यकी बात है कि योगका यह व्यापक अर्थ आजकी भाषामें स्वीकार नहीं किया जाता । माक पकड़कर, पलची मारकर, वही देर तक नींद सेना और भूलों मरगा ही छोर्गोंकी दृष्टिमें 'योग' रह गया है ।

हमारे साहित्यकारोंने करुणरसका बहुत सुन्दर विकास किया है । कालिदासका 'अजबिराज' या 'भवभूतिका अुत्तररामपरिज' करुणरसके अुत्तम ममूने माने जाते

है। भवभूति जब कण्ठरसका राग छड़ता है तब पत्थर भी रोने लगते हैं और बप्पकी छाती भी पिघलकर खुर खुर हो जाती है। कण्ठरस ही मनुष्यकी मनुष्यता है। फिर भी यह बकरी नहीं कि कण्ठरसका उपयोग केवल स्त्री-पुरुषके पारस्परिक विरह-वर्णनमें ही हो। मैं अपने बप्पके छिमे विज्ञाप करे तो मुत्तनेसे भी कण्ठरस का क्षेत्र पूरा नहीं होता। मनन्त कालसे हर जमानेमें, और हर मुल्कमें हर समाजमें और हर कार्मसे महान् सामाजिक अन्याय होते आये हैं। हजारों-लाखों लोग जिन अन्यायोंके शिकार होते आये हैं। ब्रह्मान, दारिद्र्य, भूख-भीषमाह, असमानता, मत्सर, द्वेष, लोभ आदि अनेक कारणोंसे तथा बिना कारण भी मनुष्य मनुष्यको सताता है, गुलाम बनाता है, बूझता है और बर्मानित करता है। यह सब घटनाओं कण्ठरसके स्वाभाविक क्षेत्र हैं।

नरु राबाके हंसको पकड़ने या अबाध सिंहके मन्दिनी गाय को घर बबोचनेका दुःख हमारे कवियोंने गाया है। कोअी निपाद कौबपसीके ओढ़ेमेंसे अकबो बाणसे बिद्ध करता है तो बाल्मी किरी घापवाणी सारी दुनियाके हृदयको जेदकर मिस अन्यायकी तरफ बूझका ध्यान खींचती है। फिर भी मनमें ऐसा नहीं लगता कि पशुपतियोंका या गायभैसका दुःख अभी किसीने गाया है। मध्यम वर्गके लोग बिघबाओंके दुःखोंका कुछ वर्णन करने लगे हैं। लेकिन बूझमें भी भवभूतिका ओओ गुण या बाल्मीकिका पुण्य प्रकोप प्रकट नहीं हुआ है। कण्ठरसका असर जितना होना चाहिये मुत्तना नहीं हुआ है। जिस-छिमे हृदयकी सिंघा और हृदयघमकी पहचान अधूरी ही रही है। और मिसीछिमे गांधीजी जैसे व्यक्ति अस्पृश्यताके कारण अपने हृदयका दर्द व्यक्त करते हैं तो भी सामाजिक हृदय अविनाशमें मस्पष्ट ही रहता है। कण्ठरससे सिर्फ हृदय पिघले तो मुत्तना काफी नहीं है। बूझसे हृदय जुलम मुत्तना पानिये और

जीवनमें आमुझा फाँति हो जानी चाहिये । जीवनके प्रत्येक व्यवहारके लिये हृदयधर्ममेंसे मनुष्यको ओक नयी कसौटी तैयार करनी चाहिये ।

अगर यह कहा जाय कि प्राचीन लोगोंको हास्य-रसकी समर्प कल्पना तक नहीं थी तो उसमें ज्यादा अतिशयोक्ति नहीं है । नम्र बचन और सुन्दर चाटुक्तियाँ तो संस्कृत साहित्य में जहाँ-तहाँ बिलखी पड़ी है हमारी संस्कारिताकी यह विशेषता है । लेकिन अंके दर्जेका हास्यरस उसमें बहुत ही कम पाया जाता है । अब हमारे साहित्यमें हास्यरसने अनेक सफल प्रयोग किये हैं सही । फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि नाटकोंमें पाया जानेवाला हास्यरस बहुत ही सस्ता और साधारण काटिका है । हमारे व्यंग्यचित्रों (cartoons) और प्रहसनोंमें पाया जानेवाला हास्य रस आज भी बहुत निम्नश्रेणीका है । पाठशालाके प्रति-सम्मेलनोंमें हास्य और बीर दो ही रसों को ज्यादा तरजीह दी जाती है । जिसका कारण यही है कि बिना ज्यादा मेहनत किये उनमें सफलता मिलती है अनायास तैयारी हो जाती है और ताकियाँ भी ज्यादा-से-ज्यादा मिलती हैं । लेकिन जिससे कलाकी प्रगति नहीं होती और जनता भी संस्कार-समर्प नहीं बनती ।

मैं नहीं जानता कि हमारे कलाकारोंने अद्भुत रसका परिपोष किम् किम् तरीकसे किया है । पर मेरे अभिप्रायमें अद्भुत रसकी भूतपति मध्यता (sublimity) मेंसे होनी चाहिये वरना मनुष्यका अज्ञान जितना अधिक होगा उतनी उसे हर चीज अधिक अद्भुत मालूम होगी । अद्भुतका स्वरूप ही ऐसा है कि उसके आगे कलाका सामान्य व्याकरण स्तम्भित हो जाता है । विजयनगरके आसपासके पहाड़ोंमें बड़ी-बड़ी खिस्माओंके जो ढेर पड़े हैं उनमें किसी तरहकी व्यवस्था या समरूपता तो तनिक भी नहीं है । लेकिन वहाँ तो उसकी बृहत् अरुण ही नहीं मालूम होती । सरोवरका आकार, बावलोंका

विस्तार, नदीका प्रवाह—जिनमें क्या कोसी किसी खास व्यवस्थाकी अपेक्षा रस सकता है ? भव्य वस्तु अपनी भव्यतामें ही सर्वाङ्ग परिपूर्ण हो जाती है। महारका व्याकरण नदीके लिए सागु नहीं होता, अपवनका रचनाशास्त्र महाकाव्यारके लिये उपयोगी नहीं होता। जो कुछ भी भव्य विस्तीर्ण मुदात्त और गूढ़ है वह अनन्तका प्रतीक है और जिसीलिये वह अपनी सत्तास परम रमणीय है। महाकवि तुलसीदासजीने जो कहा है कि 'समरयको नहि होय गुसाबी' वह नये अर्थमें यहाँ कर्णके सूत्रके सीरपर ही अधिक सुसगत मासूम हाता है।

अद्भुत रोद्र और भयानक चीनों रसोंका अद्भुत अंक ही होता है। हृदयकी भिन्न प्रतिभूतियों (Responses) के कारण ही उनके अलग-अलग नाम पड़े हैं। जब शक्तिके आविर्भावसे हृदय दब जाता है सज्जा खो बैठता है तब मयानक रसकी निष्पत्ति होती है। किसी अूषी और लटकती हुआ कणारके नीचे जब हम सड़े रहते हैं तब हम यकीनके साथ जानते हैं कि यह घिसाराशि हमारे शिरपर दूट पड़नेवाली नहीं है अकूटे आँधी-तूफानसे वह हमारी रक्षा ही करेगी। फिर भी अगर वह कहीं गिर पड़े तो '—जितना समाल मनमें आते ही हम दब जाते हैं। यह भी अक शक्तिका ही आविर्भाव है। पर्वत-प्राय सागर-सहरोपर सवार होकर सफर करनेवाले जहाजमें बैठे-बैठे हम इसी भावका दूसरी तरहसे अनुभव करते हैं।

भव्य वस्तुके साथ मनुष्य हमेशा अपनी तुलना करता ही रहता है। यह तुलना करते-करते जब वह थक जाता है तब आप-ही-आप रोद्ररस प्रगट होता है। और जहाँ भव्यताकी मनीनता और अस्वा कमस्कार मिट नहीं गया है वहाँ अद्भुत रसका परिषय मिलता है। यह तीनों रस मनुष्यकी सबेदन शक्तिपर आधारित हैं। हम नहीं जानते कि आकाशके अनन्त तारोंको देखकर जामबरोंको कैसा लगता होगा। बालकोंको

तो वह एक पालने के धौधोवे की तरह मालूम होता है। लेकिन वह एक प्रौढ़ सगोष्ठ्यास्त्री को तो निरय-नूतन और वर्धमान अद्भुत रस के विद्वक्ष्य-दर्शन के समान लगता है। अद्भुत रस की धुंधली मह है कि जिस तरह मेघ का गजन सुनकर तिहको गर्जन करने की विच्छा होती है, उसी तरह आर्य हृदय को भव्यता का दर्शन होते ही अपनी विभूति भी खूनी ही विराट् भुवात और भव्य करने की विच्छा हो खूती है। अद्भुत रस में मनुष्य की आत्मा अपने का अद्भुतता से भिन्न नहीं मानती बल्कि एक तरह से उसमें वह अपना ही प्राकट्य देखती है। लेकिन रौद्र या भयानक में वह अपने को भिन्न ही मानती है। जिसने भिन्न दोनों वृत्तियों का अनुभव किया है जैसे कसाकरने के का-मेक घोषित किया कि शिव और शत्रु एक ही है शान्ता और दुर्गा एक ही हैं। जो महाकावी है वही महासूयमी और महा-सरस्वती भी है। श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन होते ही हनुमानजी के भक्त हृदय में स्वीकार कर लिया—

“वेहकुदधा तु वासोऽहम् जीवकुदधा त्वदभशकः।

मास्मा-कुदध त्वमेवाऽहम्, यथेच्छसि तथा कुक् ॥”

जिस अन्तिम चरण में जो संतोष है वही कला के क्षेत्र में शान्तरस है। रौद्र भयानक और अद्भुत मह तीनों रस अगर अन्त में हमें शान्त रस में न ले आये संतोष न रहे तो भिन्ने बोमी रस ही न कहेगा।

अवस्त १२११

११

मेरे साहित्यिक सत्कार

पुराने जमाने में वेदालत की जितनी चर्चा और मोमांसा होती थी उससे आज की साहित्य-चर्चा कुछ कम नहीं है। आज साहित्य का तन बहुत सूक्ष्म और अटपटा हुआ है। जिस तन के अनुसार लिखना को भी आसान बात नहीं है। जिस

सत्रकी सानासाहीस भूबकर यकारा भवभूति दोल भुठा या—

सर्वथा व्यवहर्तव्यम् कुतो हृष्यवचनीयता ।

ययास्त्रीणां तथा वाचाम् साधुत्ये वृजमो जनः ॥

लेकिन आद्य साहित्यकारक सामने कौनसा सत्र था ? हर दश सया समाजका आद्य साहित्यकार अनजाने ही साहित्यिक हुजा होगा क्योंकि साहित्य बिसकुल प्राकृतिक प्रवृत्ति है । जबलोकन निरीक्षण विचार कल्पना या भावना जब मुत्कट हो जाती है तब मनुष्यसंस्कार-बोला जाता है और मुत्कटताका यह स्वभाव ही है कि उसकी आपामें कुछ असाधारणपन कुछ आकर्षण कुछ घमस्फूर्ति आ ही जाती है । मुत्कटता में स्वाभाविक सौन्दर्य प्रकट हुमे बिना रहता ही नहीं । यह दोमा पहले तो आप-ही आप फूट निकलती है लेकिन बादमें वह दोमा ही सारा ध्यान खींच लेती है और सराहनाका विषय बन जाती है । मुसमेंसे धीरे-धीरे साहित्यका सत्र बघ जाता है ।

पहले तो लोकसाहित्यकी ही सृष्टि होती है । उसमें धीरे धीरे प्रयत्नपूर्वक दोमा खानेस दिष्ट साहित्य तैयार होने लगता है । लोकसाहित्यमें दो लक्षण हमेशा दिखायी देते हैं । साहित्य शास्त्र और घमशास्त्रके कृत्रिम और निश्चित बन्धनोंमें वह मही बँधता । सामान्य लाकममाजकी स्वतंत्र प्रवृत्ति और स्वयम् प्रेरणाके बशमें जब तक साहित्य रहता है उमी-तक वह लोक-साहित्य हाना है सदाचार और सदमिथुनिकी जितनी रखा महजबपसे उसमें की जाती हो अनुमेसे ही वह सन्तोष मानता है । प्रयत्नपूर्वक मर्यादाओं बांधकर आद्यहके साथ अनुका पासन करने आये तो लोकसाहित्यका लौकिक-पन मिट जाता है ।

लोकसाहित्यकी बड़ी फगल आगब बाद मनुष्यको उसमें छनो खानेकी बिच्छा होती है । और मुसीमेंसे दिष्ट समाज-का साहित्य बढ़ता है ।

लोकसाहित्यकी स्वाभाविकता और ताजगी मुसमें हो या न हो दिष्ट-साहित्यका असर मुसपर पड़ा हो या न हो, मैं

अपनेका स्वाभाविक लेखकोंकी खेजीमें ही गिनता हूँ। अनुभव और चिन्तनसे जो कुछ और जैसा कुछ सूझे वहीं खुस-खुस वक्त लिख डालना मैंने पसन्द किया है। प्रयत्नपूर्वक साहित्य सेवा तो मेरे हाथों गुज़ी ही नहीं। शिष्ट समाजमें बिचरता हुआ भी मैं शिष्ट समाजका नहीं हो सका। जैसा कुछ भगमक था वैसा-का-वैसा ही रह गया हूँ। मुझे जिसका दुख नहीं है क्योंकि खुस रास्तेसे ही मैं अपने-अपनेपनकी—फिर वह अपना-पन चाहे जिसना स्वल्प क्यों न हो—रक्षा कर सका हूँ। जनगढ़ मनुष्यको सामाजिक व्यवहारमें कदम-कदम पर कड़वे अनुभवों का सामना करना ही पड़ता है। जैसे अनुभव मेरे सिधे दो नतीजे लाये। जेक तो यह कि मैं समाजसे अकृताकर कुदरतकी गोदमें जा पड़ा और दूसरा यह कि मैं अन्तर्मुख हो गया। पहले-पहले ये दोनों बुनियाँ साहित्यसृजन करने न देती थीं। जिसलिये यानी संयमके अदृश्यसे नहीं धार्मिक आत्म-अविश्वास, सज्जा और मुख्यभावके कारण मैं साहित्यसे दूर ही रहा। बिद्याध्ययनक दिनोमें जो कुछ पढ़ना पड़ा और जो कुछ बोझा-सा अपने असाधारण आकर्षणके कारण नजरमें जँच गया भुतना ही मैंने पढ़ा। अपनी साहित्य-शक्तिको बढ़ानेका जो कीमती मौका था उसे मैंने कोभी फायदा नहीं अठाया।

मुझमें अगर कुछ भी साहित्यशक्ति पैदा हुई हो तो वह अपने अनुभव और विचार व्यक्त करनेकी अस्कटतामेंसे ही हुयी है। और वह स्वाभाविक रूपसे सभाषणमें ही परिणत हुयी। काश खुस वक्त मुझे बासरी (दासरी) लिखनेकी आदत होती। अपने जेक शिक्षकको मैंने जैसी बासरी लिखते देखा है। अमकी बासरी पढ़नेकी हमें बिजाबत थी लेकिन उसका आस्वाद लने जितनी शक्ति हममें न थी क्योंकि वे अपनी बासरी अग्रजीमें लिखते थे। उसे अगर वे मराठीमें लिखते तो मेरे जैसे अनेक मुख्य बालकोंको असाधारण लाभ पहुँचा होता।

जितना तो सही है कि चिट्ठी-पत्र और बासरी ही सामान्य

जनसमाजका साहित्य है। मेरे खयालसे वही मुख्य कोटिका साहित्य है। दूसरेसे कहने, जैसा जितना कुछ हो, उतना ही हम सत-यममें लिखत हैं और अपने जीवनमें जो कुछ दर्ज करने जैसा हो, यानी छासियत रजना हो वही वासरीके पृष्ठोंमें आ जाता है। ऐसी बहिया छलनोसे छनी हुमी कृतियाँ साहित्यका दर्जा हासिल करें तो अस्ममें क्या आश्चर्य ? साहित्यकार मते कहें कि माटकान्त कवित्वम्, अन्तकी बातका विरोध मैं नहीं करता। सभी प्रकारकी विविधता और आकर्षकता माटकामें स्वभाविक रूपसे भिक्कटी होती है। फिर भी मैं कहूँगा कि पत्रमूल एव वासरी मूल च साहित्यम्। दोनोंमें वास्तविकताका बड़ेसे बड़ा आधार रहता है। आजकलके कृत्रिम युगमें पत्र और वासरी दोनों बनावटी ढंगसे भी लिखे जा सकते हैं। अस्मका विचार यहाँ किसलिये बह ? दुनियाकी कौनसी चीज बिहून नहीं होनी ? सम्पादन और मनन जिस तरह अलकट व्यापार है वृत्ती तरह पत्र और वासरी दोनों का सेवन अलकट व्यापार है।

हमारे बचपनमें साहित्य बँड करनेका रिवाज बहुत था। स्कूलमें तथा घरमें सबकोसे बहुत कुछ बँड करवाया जाता था। लेकिन हमारी प्रामाणिक बाल्यामामें मुख्य अभिनिधिसे बचन देनेवाला कोशी न था। घरमें तो वासवाच और सकाम भक्तिसे चुना हुआ साहित्य मान करनेका रिवाज था। रामकी मन्दिरों में पौराणिकोंका पुराण सुनने बैठें और रातको हरिदासके संगीतमिश्रित हरिकौतनका मञ्चा मूटने जायें तभी साहित्यरसिकताका असूट आस्वाद मिश्रता था। अस्ममें भी अर्थात्कारकी अपेक्षा वाग्दालकार और दत्तपत्र ही ही हमारे च साहित्याचार्य कुर्बान हात थे।

घरमें सबसे बड़े भाभी संस्कृतके बड़े रसिक थे। बचपनमें मुन्हें पढ़ानेके लिये अकसास्वीजी रत गय थे। भाभीसाहब कभी-कभी संस्कृतके अच्छे-अच्छे प्रकारे पढ़कर मुनाते थे, दूमते-रह-

सूते वक्ता कठ किये हुये एलोक गुमगुनायेकी अन्हें आदस थी। अर्थ भस्मे ही समझमें न आये लेकिन संस्कृत वाणीकी ध्वनिके प्रति आदर और प्रेम तो मेरे मनमें बचपनमें ही जिस तरह जागृत हुआ था। आज भी मुझे जैसे वो फिकरे याद हैं जिसका वर्ष में समझ सका था। अंक है सावित्री-आख्यानका और दूसरा है शंकरभाष्यके अंक आसान अक्षका।

अंक तरफ माताजीके मुँहसे सुने हुये पौराणिक लोकगीत, दूसरी तरफ संस्कृत सुभाषित और बीचमें समायी हुयी पौराणिकोंकी गरी—यह मेरा बचपनका साहित्यिक पाठेय था। दिसचस्पी आने लगी पांडवप्रताप शिवसीलामृत भक्तिविजय हरिविजय आदि मराठी काव्यग्रंथ और 'नवनीत' नामके मराठी काव्यग्रंथमें आये मराठी कवियोंके गीत गानेमें। जिस पुराने मराठी साहित्यके कारण मराठी संस्कृतग्रंथ बड़ा और संस्कृत सोसनेकी पूर्ण तैयारी हो गयी।

'संस्कृत घौली या लोकसुखी ?' का समयका आबजल प्रत्येक प्रान्तमें बस रहा है। हमने यह सगढ़ा यूरपसे मोस लिया है। लोक-भाषा लोकसाहित्य और अनेक देखने शब्दोंकी मुझे कद्र है। यह मैं भी मानता हूँ कि उनके बिना लोकजागृति और लोकसिखा संभव नहीं है। फिर भी जो लोग यह कहते हैं कि संस्कृतकी घुरा फेंक दो और सिर्फ लोकभाषासे ही प्रेरणा लो अनेसे मैं सहमत नहीं हो सकता। संस्कृत भाषा चाहे जितनी मुश्किल हो उसका व्याकरण चाहे जितना अटपटा हो। फिर भी यह हमारी भाषा है हमारी समायी हुयी भाषा है अनेमें हमारी अनताका स्वभाव और उसका मानसिक गठन प्रतिबिंबित हुआ है। उसके पोषणके द्वारा ही हम संस्कृति-पुष्प होनेवाले हैं। अंग्रेजोंके लिये जिस तरह ग्रीक या लैटिन पराधी भाषाएँ हैं उस तरह संस्कृत हमारे लिये पराधी नहीं है। हम अगर संस्कृतसे पोषण लेना छोड़ दें तो हम सभी तरहसे क्षीण हो जायेंगे। हमारी सांस्कृतिक अनेता और सांस्कृतिक समृद्धिमें

संस्कृतका हिस्सा सबसे बड़ा है। विज्ञान संस्कृत साहित्यका मकान करके खुसमेंसे बीजह नहीं बल्कि चौदह हजार रत्न अपनी बेसी भाषाओंमें हमें साने चाहिये और जिस विरासतकी सुगंध हमारे समाम खेतोंमें मनुकनी चाहिये।

साहित्यकी अन्तम तैयारी साहित्य-विवेचनसे नहीं बल्कि सर्वश्रेष्ठ साहित्यके गहरे अध्ययनसे हो सकती है। साहित्य विवेचन अधिक मात्रामें और बहुत देरसे आना चाहिए, बरना अमिप्राय और अमिद्विष असमय ही परिपक्व होते हैं।

और साहित्यकी सृष्टि से विवेचनमेंसे हरमिज नहीं हानी चाहिये। साहित्यके सिधे अर्थवस्तु सिमुक्षा और दूसरेके साथ गहरा विचार-विनिमय करनेकी आसुरता प्रधान प्ररमा हो सकती है। माताका अपने बालकोंके प्रति प्रेम, पतिपत्नीका एक दूसरेके प्रति अनुराग और गुरुशिष्योंके बीचका भक्ति वात्सल्य ये भावनाएँ जितनी अत्कट होती हैं अतनी ही साहित्य सिमुक्षाकी वृत्ति भी अत्कट और अवम्य है। यह सिमुक्षा अगर दम परिणामी न हो तो उसे पागल्पनकी अपमा दी जा सकती है। साहित्य आज जितना सस्ता हुआ है और बसमभ बस जितना खराब किया गया है अतना अगर वह खराब न कियागया होता तो साहित्यने भारी-स-भारी परिणाम दिखा दिय होते। अमकर साहित्य आत्माकी अमृतकसा है क्वाकि वह अंतन्यकी प्रेरणा है।

साहित्यकी सिमुक्षा और अमका केवल आस्वाद लेनेकी रसिकता यह से बीज बिन्कुस अलग-अलग है। यह नहीं कहा जा सकता कि केवल रसिकतामेंसे सिमुक्षा पैदा होगी हो। सिमुक्षा स्वतंत्र प्ररणा है। साहित्यकी सिमुक्षामें समाम सिमु साअके सदान दिखाजी देते हैं। जिस तरह बाल-बिवाह खराब है असी तरह छोटी अम्रमें जल्दी-जल्दीमें किया हुआ साहित्य-अमन खराब है। दोनोंमें बड़ी अम्रतक अत्यर्थ मानी दीयेरता आवदयक है। दोनोंमें तुमना करनी ॥ हो, सारतम्य

निर्दिष्ट करना हो, तो जीर्णपातकी अपेक्षा बाकपात अधिक भय होता है। जिस पुराने वचनको नये अर्थमें साहित्यपर भी चरितार्थ किया जा सकता है। यह कहना मुश्किल है कि साहित्य जैसी मंगल वस्तुमें मर्यादा किस तरह रखी जाए। फिर भी अतना तो समझ ही लेना चाहिये कि अतिसेवनसे नाराजी पैदा किये बिना नहीं रहता। अतिसेवनसे शायद सत्कारिताकी चमक जा सकती है लेकिन तेज तो कभी नहीं जा सकता।

कुछ साहित्यकीरोंको हम अखंड सृजन करते देखते हैं। यह अखंड साहित्यसृष्टिका अधिकार जीवन बीरों तथा जिम्मा मिशनरियों का ही है।

अध्ययनकालमें मराठी संस्कृत और अंग्रेजी साहित्यके अतृष्ट संघर्षोंका असर मुझपर पड़ा। रवीन्द्रनाथ ठाकुरका साहित्य और गांधी-साहित्य उसके बाद आये। जिन दोनों राष्ट्र-गुरुओंकी विभूतियाँ भिन्न-भिन्न हैं दोनोंकी साधनाएँ अलग अलग हैं। लेकिन दोनोंके साहित्यका गहरा अध्ययन करनेपर यह बात साफ हुई बिना नहीं रहती कि दोनोंका दर्शन इरीस-करीब एक-सा ही है। मासुनिकोंमें भांडारकर गान्धे स्वामी विवेकानन्द भगिनी निवेदिता साहा हरदयाल आनन्दकुमार स्वामी बाबू विपिनचन्द्र पाल अरविन्दगोप रवीन्द्र-नाथ ठाकुर और गांधीजी-जिठनोंका प्रभाव मुझपर अधिक-से अधिक पड़ा है ऐसा मैं मानता हूँ। आश्चर्य यह है कि मैं लोकमान्य तिलकका भक्त होते हुए भी और अनेक आन्दोलनमें शरीक होनेपर भी उनके साहित्यका मुझपर बहुत ही कम असर पड़ा। इसमें कुछ-न-कुछ ऐसा है जिससे मैं उनका साहित्य हजम न कर सका। अंग्रेजी साहित्यके बारेमें यहाँ कुछ भी लिखनेकी इच्छा नहीं है। मैं अतना ही कह सकता हूँ कि अंग्रेजी साहित्यके प्रति मेरे मनमें गहरा आवरण है हालाँकि मुझे साहित्यका सेवन तो मैं बहुत कम कर सका हूँ।

कवि हों या गद्यलेखक, मुझे जीवनका गहरा अध्ययन या दर्शन होना चाहिये और आजकल तो साहित्यकारके लिये मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान, भौतिकविज्ञान और धर्मशास्त्रका विस्तृत अध्ययन करना जरूरी है। जिस आदर्शतक जो पहुँचे हैं, मुझे साहित्य समाजपर गहरा असर कर सकता है। बिबेकानन्द, मिशेदिता, रवीन्द्रनाथ और गांधीजी मुझपर जो मितना प्रभाव डाल सके, उसका यही कारण है। उनके साहित्यने मुझे जीवनमें प्रेरणा दी, हृदयको सात्वित दी, और बुज्ज्वल भविष्यकी झलक दिसायी।

इतिहासकारोंका भी मुझपर गहरा असर होना चाहिये था। लेकिन जैसा इतिहास मैं चाहता हूँ, वैसा इतिहास मैंने नहीं देखा है। मेरी रायमें जो विकास हो, वही यथावश्यक इतिहास लिख सकता है।

×

×

×

मेरे विचारसे हमारे देशके लिये रामायण और महाभारत अत्यंत पौष्टिक आहार हैं। दोनों अलग-अलग चीजें हैं। सिर्फ रामायणसे काम नहीं चलेगा। सिर्फ महाभारतसे भी काम नहीं चलेगा। यह दोनों संक्षेपमें भी नहीं पढ़ जा सकते, यह पूरे-पूरे ही पढ़े जाने चाहिये। साथ-ही साथ उपनिषद, योगसूत्र और मनुस्मृति पढ़ी जायें तो हमारी बहुत कुछ तैयारी हो जायगी। मुझमें भी भीता पढ़नेके बाद ही उपनिषदोंका अध्ययन होना चाहिये। अमेरिकन लोगोंने लिये जो स्थान कोलंबसका है, वही स्थान हमारी संस्कृतिमें उपनिषदके आत्मबीरोका है। हमारे साहित्यमें उपनिषदकी कठिनाईओं और पालीभाषाके बोझ सभाषणोंको सभी तरहसे हमारा मूलधन कहा जा सकता है। मुझमें अन्दर ही मुझे अपनी संस्कृति की गगोत्री मिला जाती है। मुझमेंसे प्राप्त होनेवाले जीवनदर्शनको अद्यतन करनेके लिये मुझमें भौतिक-विज्ञान, संपत्तिशास्त्र और सामाजिकविज्ञान इन तीनोंको

शहरोंकी स्थापना करनेवाले आर्योंने हिन्दू-संस्कृतिका धोड़ा-बहुत प्रसार किया तो सही मगर हिन्दू-संस्कृतिका विस्तार करनेवाला सच्चा प्रचारक तो शोंपड़ीपर अंग्रे हुअे तुंबेको ही शिक्षापात्र बना-कर, क्षरीरपर ओढ़नेके वस्त्रोंको लाल मिट्टीसे रंगकर 'न घनेन न प्रजया त्यागेनेकेन अमृतत्वमानसु' कहकर धर्म तथा अमृतत्व का प्याला संसारको पिसानेके लिये निकल पड़नेवाला सर्वसंगपरि-त्यागी परिब्राजक है । जिस मार्गके आद्य परिब्राजकने तो अंतर भारतमें ही विहार किया, किन्तु उसके सिष्योंने अक्कोमेन जिने 'क्कोधम्' कहते हुअे सारे युरेशियाको व्याप्त कर दिया ।

विविधता सृष्टिका मूलमंत्र है । इतिहास-विधाताकी यह विज्ठा नहीं है कि एक ही संस्कृतिका प्रसार सारे जगतमें हो । विविधतामे एकताको प्रस्थापित करनेमें ही प्रभुको आनन्द है ।

जिसे अकांगी साक्षात्कार हुआ है उसकी समझमें यह तत्त्व नहीं आता और जिसीलिये अपने ही तत्त्वका सार्वभौमत्व प्रस्थापित करनेके लिये वह निकल पड़ता है । फिर असा भी नहीं है कि यह प्रचारक हमेशा निःस्वार्थ ही होता हो ।

नूतन तत्त्वप्राप्तिका पुनोरसवके समान आनन्द जब पेटमें न समा सका तब मुसलमानी धर्मको सारे आलममें फैलानेकी गरजसे अिस्लामी धर्मवीर आगे बढ़े । आसपासकी जंगली जातियोंको मुसलमानी धर्मकी अुच्चता आसानीसे पसंद आयी और वे अुसमे क्षरीक हो गये । दूसरी तरफसे मुसलमानोंने वीरानी संस्कृतिको स्वीकार किया । छविज मुसलमानी धर्मको आत्मगौरव (सार्वभौम) बनाना हो तो हिन्दू और वीसाभी संस्कृतियोंपर, आ कि पूर्व और पश्चिमके छारोंका संभार रही थी, भी विजय प्राप्त करना जरूरी था । वैजयोगसे हिन्दुस्तान और यूरोप दोनों जगह किसी अुसमें संघटनित मष्ट हो चुकी थी । युरपमें छोटे-छोटे राष्ट्र एक दूसरोंसे झड़ भरते थे और हिन्दुस्तान में अनेक जातियाँ और अनेक छोटे-मोटे राजा 'मैं यड़ा या तू बड़ा' कहकर आपसमें झगड़ रहे थे । स्वाभाविक रूपसे ही साहित्यिक

मुसलमानोंके लिये कुरान सलवार और व्यापार प्रसार करना आसान होगया । मुसलमानोंने स्पेनके अंदर अल्हम्ब्रा (छात्र महल) बनाया और आगरेमें ताजमहल । ताजमहल चाहे जितना सुन्दर क्यों न हो लेकिन आखिर है सो वह अब क्षय ही । मुमताज बेगमको ही नहीं बल्कि साथ-साथ बिस्सामी संस्कृतिके विस्तारको भी अमुके गर्भमें दफनाया गया ।

यूरोपमें भीसाबी धर्मका प्रचार तो बहुत ही हुआ था । लेकिन भीसाबी धर्मका नम्र नीतिशास्त्र यूरोपीय सौर्गिक गले कदापि अंतरा न था । अक गालपर तमाचा पड़े ता मुरन्त दूसरा गाल धामे करनेकी तैयारी यूरोपमें किसीभी समय न थी । असी हालतमें मुसलमानी सलवारकी मार शुरू होते ही यूरोपकी क्षात्र वृत्ति जोशमें आयी और चार्ल्समान राजाके समयसे लेकर आज तक मुसलमानी सत्ताको धक्का देकर यूरोपमें बाहर निकाल देने की कोशिश चल रही है । अब तो ऐसा मामूल् नहीं देता कि मुसलमानी संस्कृतिको सिध्द यूरोपसे निकाल बाहर करके ही यूरोपीय राष्ट्र सन्ताप मानकर चुपचाप बैठ जायगे । अफ्रीका महाद्वीपमें भीसाबी और मुसलमानी दोना धर्म अपना-अपना विस्तार करनेकी कोशिश कर रहे हैं । अमुमें भीसाबी धर्मकी अपेक्षा मुसलमानी धर्मको अधिक सफलता मिलती है जिससे भीसाबी सौर्गिकोंको बहुत दुःख होता है । ज्यादातर मुसलमान राष्ट्रको यूरोपकी अनजाने आज व्याप्त कर रखा है । जिसके परिणामस्वरूप कभी-न-कभी मुसलमानी राष्ट्र फिरसे सजीव होकर भीसाबी राष्ट्रोंपर हमला किये बिना न रहेंगे । यह तो नहीं कहा जा सकता कि आपात प्रत्यापातके निर्दय नियमके गिकेजमें फँसी ये दो संस्कृतियाँ जिस तरह कब तक रुकती ही रहेंगी । मुत्साहवे प्रथम जोशमें सारी दुनियाको जीतनेके लिये निकली हुओ बिस्सामी संस्कृतिको यूरोपमें जिस तरह सह मिली और अमुका गर्भज्वर अंतर गया असी तरह हिन्दुस्तान में मुसलमानी सत्तानवका सिक्कों और बराठोंकी

जबर्बन्त विरोध हुआ और यहाँ भी मुसलमानी संस्कृतिका अभिमान धूर धूर हो गया। 'तुम अपने धर्मका पालन करो हम अपने धर्मका पालन करेंगे' यह हिंदू धर्मका स्वधर्मरहस्य मुसलमानोंकी समझमें आने लगा है। कुरान सरीफमें भी एक ऐसा वचन है कि तुमको तुम्हारा धर्म और हमको हमारा धर्म मुबारक हो।' यह मालूम कर सेना जरूरी है कि बुद्ध मुसलमान जिस वाक्यका क्या अर्थ लगाते हैं।

जीसाजी धर्ममें असलमें देखा जाय तो सड़ाखीके लिये स्थान ही नहीं है। मुसलमानी धर्ममें धमप्रसारके लिये लड़ना पुण्यप्रद माना गया है। बितना ही नहीं बल्कि उसे कर्तव्य समझा गया है। हिन्दू धर्म बीचके मार्गको स्वीकार करता है। हिंदू धर्ममें धर्मानुकूल रक्षाके लिये युद्धको विहित माना गया है। आत्मरक्षा या धर्मरक्षाके लिये करनेके युद्धको हिंदू धर्म 'यदृच्छया बोधपन्न स्वगदारमपावृत्तम्' मानता है।

That thou mayest injure none, dove like be
And serpent like that none may injure thee.

जिस दाम्बिकके वचनमें हिंदू तरवका बचास्वित धर्मन किया गया है। हिंदू लोगोंने अपने बचावका प्रयत्न तो किया है लेकिन बदला लेनेकी बुद्धि मूर्छ कमी नहीं सूझी और किसीलिये आज हिंदू मुसलमानोंके अकसाय रहनेकी समाधान कल्पनामें तो आ सकती है।

पश्चिमी संस्कृति अर्थप्रधान है। हिंदू-मुसलमान संस्कृतियोंने जीवनके आर्थिक पहलूकी ओर ध्यान ही न दिया। अस्के प्रायश्चित्तके तीरपर दानोंको आज पश्चिमी सत्ताने पाशमें जकड़कर रहना पड़ा है। जीवनको परिपूर्ण बनाना हो पार मायिकके साथ ऐहिक कल्याण साधना हो तो बीसा कि श्री वेदव्यासजी कह गये हैं

धर्मार्थकाया-सममेव तैव्याः

हमने जिसमेंसे एक अंगक प्रति सापरबाही करती। अपनी

बुद्धीसे हमने जिस अंगका अनुशीलन न किया उसका अनुशीलन पराभव और परतंत्रताकी कठोर छायामें भीस्वर ने हमसे कराया। पैनाबिस्मामिक लोग आते जो कहे लेकिन बिस्मामी संस्कृतिमें अहोगीर बननेका मोह अब नहीं रहा है। जिस तरह हिन्दुओंने वरकी धुड़ि न रत्नकर सिर्फ अपने बचाव के लिये ही विरोध किया उस तरह हिन्दू-मुसलमानोंको भेज होकर सार्विक वृत्ति द्वारा और आर्थिकबलका प्रयोग करके भिन्न अर्थपरामर्श पश्चिमी संस्कृतिका विरोध करना चाहिये।

जिस अंगम संस्कृतिका तीसरा मनुना हिन्दूधर्ममेंसे ही निकले हुये बौद्ध धर्मका है। जिस धर्मको भी सार्वभौम धर्मने की पहलसे सार्वभौम थी। लेकिन उसके साधन सौम्य और सार्विक थे। जिसलिये उसके बिस्तार या संकोचमें रक्तपात की कोभी आवश्यकता दिखायी न दी। जिस धर्ममें सत्यका जितना अंश है उसका प्रसार आप-ही-आप होता है और आमक कम्पमाओं या अहंकार तलमें जमकर रह जाता है। जिस तरह समुद्रमेंसे घुड़ पानीकी भाप बनकर आकाशमें उड़ जाती है और सारा नमक नीचे रह जाता है उस तरह बौद्ध धर्मका आवश्यक होता आया है।

हिन्दुस्तान ही सब धर्मोंका ननिहाल है। धर्मोंकी व्यवस्था करनेकी शक्ति हिन्दुस्तानमें है। हिन्दू संस्कृतिमें जयमकी अपेक्षा स्वावरतत्त्व विधाय है। और असल बात तो यह है कि हिन्दू संस्कृतिमें अहंकार नहीं है। अब संस्कृतियोंके समन्वयका प्रथम प्रयोग परमेश्वर हिन्दुमानका छाव और कहाँ जाकर करेंगे ?

२

जीवन-चक्र

तपस्या भोग और यज्ञ—यह भेक महान् जीवन-चक्र है मनुष्य किसी कामनाम प्रेरित होकर संकल्प करता ।

संकल्पकी सिद्धिके लिये मनुष्य जिन-जिन कामोंको उठाता है वे सभी तपके नामसे पहचाने जाते हैं। काम सुद-बसुद अथवा स्वतः प्रिय होते हों या नहीं किन्तु संकल्पसिद्धिकी आशा हीके कारण मनुष्य उनको प्रेम या उत्साह-पूर्वक उठा लेता है। इस तपके अंतमें फल-प्राप्ति होती है। फल प्राप्तिके बादकी क्रिया ही मांग है। फलोपभोग हमारी धारणासे भी गूढ़ वस्तु है। यदि फलोपभोगमें केवल तृप्ति ही होती तो उसीमें मनुष्यको आत्म-साक्षात्कार हो जाता पर फलोपभोगके आनन्द हीमें विषण्णता भरी होती है। हम हमरेक आनन्दमें अनजाने आत्माको प्राप्त करना चाहते हैं। कामना-पूर्तिसे मिले हुए आनन्दके बाद अंक क्षणमात्र मोहबन्ध सन्तोषको प्राप्त कर बिस कहता है कि मैं जो चाहता था वह यह नहीं है। जितने ही संसृत होकर यदि मनुष्य कामनाओंसे विमुक्त हो जाय तो उस आत्म प्राप्तिके मार्ग मिल जाय। परन्तु सत्यका मुख सोनेके ढक्कनसे ढका जाता है। एक संकल्प पूरा नहीं होने पाता कि दूसरा संकल्प उसीमेंसे उत्पन्न हो जाता है और इस तरह फिर नयी प्रवृत्तिमें नये तपमें और नये भोगमें मनुष्य बहने लगता है।

जिसमें यज्ञको स्थान कहाँ है ? प्रत्येक मास और कामना से किया हुआ प्रत्येक तप प्रकृतिसे लिया हुआ ऋण है। मनुष्य उसे चुकाकर ही ऋण-मुक्त होता है। मुक्त अन्न खाना है किसी लिये मैं जमीन जोतता हूँ उसमें धीरे धीरे फसल कटने तक सतमें परिश्रम करता हूँ और जिस तरह जमीनका सार निकासकर उसका भोग करता हूँ। मेरा धर्म यह है कि मैंने भूमिसे जितना सार लिया उतना ही उसे फिर लौटा दूँ। जिस तरह भूमिका उसकी पहली स्थिति प्राप्त करा देना ही यज्ञ-कर्म है।

प्रवासमें मैं किसीके यहाँ रात-भर रहा। मुझे रसोई बनानी है, मैं घरवालोंके पाससे बर्तन माँगकर लेता हूँ। अब बर्तनोंमें

स्नाना पकाना मेरा तप है और भाजन करना मेरा भोग ।
 कितना करनेक बाद घरवालेके वर्तन भाँजकर जैसे थे वैसे ही
 करके द देना मेरा यज्ञ-कर्म है ।

मुझे साम्राज या कुँभपरस्नान करना है । मैं पापी निवास
 सेता हूँ तो वह मेरा तप है स्नान करता हूँ तो वह मेरा भोग
 है । अब यज्ञ कौनसा ? बहुतेरे मनुष्य—भगभग सभी—
 विचारतक नहीं करते कि जिसमें कोअी क्रिया बाकी रह गयी
 है । शास्त्रोंमें लिखा है 'यदि तुम तासाबमें स्नान करो तो
 जितनी तुमस हा मक उसकी कीचड़ निकालकर बाहर फेंक
 दा । यही हमारा यज्ञ-कर्म है । कँअमें नहाते हों तो उस
 कुँअके आसपासकी गवगीका दूर करना हमारा आवश्यक यज्ञ
 कर्म है ।

गीता कहती है 'आ जिस गरहका यज्ञ-कर्म नहीं करता
 वह पोर है । वह पापी मनुष्य शरीरका तृकलाफ दना नहीं
 चाहता (अर्थायुरिन्द्रियाराम) समाजकी सेवा तो ले सेता
 है पर उसस मुधार ली हुअी बीज झोटाना नहीं जानता ।
 ओ मनुष्य भोग करता है पर यज्ञ नहीं करता उसका यह
 झोक झूट होता है फिर उसके लिये परलोक ता कहाँस
 होगा ?

जिस यज्ञ-कर्मका झोप हो जातेस ही हिन्दुस्तान कपाल
 और पामर बन गया । हम स्त्रियोंसे सेवा लेत हैं परन्तु उसका
 बन्ला जुम्हें नहीं देते । किसानाके परिधमका भोग करते हैं
 पर जिसस किसानोंकी भलागी हो असा यज्ञ-कर्म नहीं करत ।
 हम अख्यजोंको समाज-सेवाका पाठ पढ़ात हैं बस-भूबक
 भी उनसे सेवा लेते हैं, पर उनके मुखार-रूपी यज्ञ-कर्म
 ठकका न करने जितने हरामखोर हम बन गये हैं । हम
 सार्वजनिक लाभ प्राप्त करनेका सत्ता दोड़ते हैं किन्तु कर्त्तव्यों
 का पालन पायद ही कभी करत है । जिससे सारा समाज
 दिवालिया बन गया है ।

मोक्ष-शास्त्र कहता है—'न्यायके लिये भी तुम्हें यज्ञ करना चाहिये । भोगके लिये किया हुआ तप आधा कर्म हुआ यज्ञ-कर्म उसकी पूर्ति है । तुम तप तो करते हो पर यज्ञ नहीं करते जिसीसे तुम्हारी वासनाओं अनियन्त्रित रूपसे बढ़ती हैं । यदि तुम यज्ञ करने लगो तो भोगकी विच्छा बन्दर भरीवित रहेगी तुम्हारा जीवन पापशून्य हो आयेगा ।

हरेक पापकके जन्मके बाद विशु-सबधके लिए स्त्री-पुरुष यदि सात वर्ष ब्रह्मचर्यमें बितानेका निश्चय कर लें तो उन्हें दीन बनकर समाजकी दया पर आधार रखनेका मौका अनुपर नहीं आ सकता ।

यज्ञ करनेके बाद—ऋण चुकानेके बाद—मनुष्य जो तप करता है जो भोग भोगता है उसका वह अधिकारी होता है उससे उसे किस्मिय (पाप) नहीं प्राप्त होता । उसकी प्रवृत्ति निष्पाप और शुद्धि-कारिणी होती है । पर यदि मोक्ष प्राप्त करना हो तो प्रवृत्तिको छोड़ देना चाहिये—अर्थात् कामना तत्प्रीत्यर्थ किया जानेवाला तप और उस तप के द्वारा सुत्पन्न फलका अपभोग बिन तीनोंको त्याग देना चाहिये । परन्तु यज्ञको तो किसी तरह छोड़ ही नहीं सकते । निष्काम—ज्ञानपूर्वक यज्ञ—कार्यमेव—करना ही चाहिये । उससे पुराना ऋण चुक जाता है अपने सम्बन्धियोंका ऋण टल जाता है समाजका सर्व-सामान्य भार कम हो जाता है पृथ्वीका भार हल्का हो जाता है, धीविष्णु सतुष्ट होते हैं और मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

हम आ जा रहे हैं जिसीमें सैकड़ों व्यक्तियोंका ऋण हम लेते हैं । प्राकृतिक शक्तियोंका तो ऋण है ही समाजका ऋण भी है माता-पिताका ऋण भी है समाजको हर प्रकारसे संस्कारी बनानेवाले पूर्व ऋणियोंका भी ऋण है और परम्परा की बिरासत हमारे लिये छोड़ जानेवाले माता-पिताओंका भी ऋण है । ये सब ऋण पंचमहायज्ञों द्वारा चुका देनेके बाद ही

मनुष्य मुक्ति या मुक्तिका विचार कर सकता है ।

जिस यज्ञ-कर्ममें पर्यायसे काम नहीं चलता । ऋण जिस तरहका हो यज्ञ भी उसी तरहका होना चाहिये । विद्या पढ़ कर गुरुसे लिया ऋण गुरुको दक्षिणा भर दे देनेसे नहीं चुकता बल्कि गुरुके दिये ज्ञानकी रक्षा कर और उसे बढ़ाकर नयी पीढ़ीको देना ही सच्चा यज्ञ-कर्म है । सृष्टिमें नबीम कुछ भी नहीं होता जो-कुछ है अतने हीमें काम चला लेना चाहिये । जिसलिये हम अपनी चेष्टाओंसे साम्बावस्थाका जितना ही भंग करते हैं अतना ही उसे फिर समान कर देना परम आवश्यक यज्ञ-कर्म है । आकाश जितनी माप लेता है अतना ही पानी फिर दे देता है । समुद्र जितना पानी लेता है अतनी ही भाप वापस दे देता है । इसीसे सृष्टिका महान् चक्र बराबर चला चलता है । यज्ञ-चक्रको ठीक-ठीक चलाते रहना शुद्ध प्रवृत्ति है । निष्काम हाकर त्याग-भावसे कम-से-कम जहाँतक अपना सम्बन्ध है जिस चक्रका वेम घटाना ही निवृत्ति धर्म है । कुछ भी काम न करना निवृत्ति नहीं वह तो दिव्यकुल हरामखोरी ही है ।

प्रजाका निर्माण करके प्रजापतिने अनेक साथ यज्ञका भी निर्माण किया इसीलिये प्रजापतिक ऊपरका बोझ हलका हो गया और इसीलिये प्रजाओंका स्वायत्तम्वनकी स्वतंत्रता किसी मोक्षकी समाधना रही ।

३

सुधारोंका मूल

रेलमें कभी धार भीड़ न हानेपर भी लोग झगड़ा करते हैं । यदि हरेक मनुष्य अपने बैठने योग्य जगह लेकर बैठ जाय तो सभी मुण्डसे बच सकें पर बिजुन ही लोग बिना कारण स्वार्थी और मनुष्य-शत्रु होते हैं । उनका यह हठहाता है कि लड़-भिड़कर जितनी जगह रोकी जा सक अतनी रोफकर ही हम मानग

फिर परबाह नहीं, यदि उन्हें ऐसा करते हुये पुरा भी आराम न हो बल्कि उन्हें अलुटा दुःख भी झुठाना पड़े। बेंचके ऊपर अधिक जगह रोकनेके लिये यदि बिस्तर न हो तो वे पालथी ही मारकर बैठेंगे, और घुस पालथीको भी अितनी पोसी करेंगे कि पैरोकी सुन्धियाँ घुसने लग जायें ! जयसक मुनकी साथ दूसरे को न सग जाय तबतक मुनके मनमें यह बिदबास ही नहीं होता कि हमारे स्वार्थकी पूरी रसा हुयी है। ऐसा न करके अगर हरेक मनुष्य सज्जनताके साथ अक-दूसरेकी सुविधाका ख्याम रखते हुये सतोष बृत्तिका विकास करे तो किसीको भी दुःख न हो और सभी आरामसे प्रवास कर सकें।

शहरों और देहातमें अब साग घर बनबाते हैं अउस बस्तमी अिसी प्रकार पड़ीसी-पड़ीसीमें जगड़ा हो जाता है। मुस जगह भी लोग सुख-दुःख अथवा सुविधा-असुविधा आदिका बिचार छोड़कर महज स्वाध धर्मके प्रति बफ़ादार बने रहनेके लिय ही कज़ीबार लगते हैं। यदि मेरी अेक बालिस्त भर जमीन पड़ीसीको देनेम मेरी कुछ भी हानि न होती हो और मेरे पड़ीसीको वह मिल जानेसे अउसकी मुत्तम सुविधा हो जाती हो तो भी मुझमें बह स्वार्थ नहीं छोड़ा जाता मेरा जी ही नहीं होता। कदाचित् मुझमें अिस बकत कहीं सदबुद्धि जा भी जाय तो मेरे सग-सम्बन्धी या मड़ोस-पड़ोसके लोग मुझे बुनियादारीवी चतुराजी मिलातेके लिये आते हैं—'तू पागल तो नहीं हो गया है ? अिस तरह कर्ण सा दामवीर बनकर परोपकार करने लगया तो लोग तुझे दिन रहाड़ बाबाजी बना देंगे। कुछ बाल-बच्चेके लिय रखेया या नहीं ? अरे ! मुसका तो काम ही रुक रहा है पाँच-सात सौ रुपय माँग के अउससे। पैरा तो हूँ ही है छोडता क्यों है ? न दे रुपये तो सोता रहे अपने घरमें। और हुमें घरब ही क्या पड़ी है ? जमीन अपनी कहीं भागे थोड़े ही जाती है। स्वार्थ-धर्मकी यह आजा अस्वीकृत हो ही नहीं सकती। स्वार्थ-धर्मके भागे पड़ीसी-धर्म फीका पड़ता है अथवा नष्ट हो जाता है। अिसलिय

मिस युगका नाम कलियुग पड़ा है । कलिका अर्ध है कलह ।

यों कृदुम्वोंके बीच अथ विवाह-सम्बन्ध जोड़ा जाता है तब भी यही दशा होती है । जो पराये प के सम्बन्धी हुमे, अतमेव वहाँ तो प्रम-धमका व्यवहार बाह्य पर नहीं वहाँ भी व्यवहार रीतिकी बसह अनुत्पन्न होगी ही । मान-सम्मानोंमें कही छोटी से-छोटी रीति भी रहने में पाव । मालिकके यहाँ गालियाँ भी सुननी पड़ती हों तो परवाह नहीं, दफ्तरोंमें अफसरकी फटकारें नीचा सिर करके सुन सकते हैं परन्तु ममकीके पाससे तो रीतिके अनुसार पूरी चीजें लेकर ही मिलनी चाहिये नहीं तो दूल्हा का लौटा लेजानेको तैयार हो जाते हैं । विवाहका मंगला चरण होता है और्ष्या और शाहस । यही दशा है जातियोंकी । पारस्परिक अविश्वास और अमीम स्वार्थ-परता । किसी मितनी हिम्मत ही नहीं कि अपने स्वार्थको छोड़ दे । यह कायरता ! जहाँ देखिये वहाँ यह बुराबी फैली हुई है ।

जब घरोंमें और जाति-पातिमें यह दशा है तब राष्ट्रों राष्ट्रोंके बीच दूसरा और हो ही क्या सकता है ? यदि पड़ोसी राष्ट्र निर्बल हो तो ऊपर ऊपर ही आक्रमण करना चाहिये । यदि वह बलवान हो तो हमें उसका डर मनमें रखना चाहिये और उसके खिलाफ दूसरे साहजिक राष्ट्रोंके साथ मिलकर कोखी पड़यंत्र करना चाहिये । यह भी नहीं कि समान बल पड़ोसी हो तो शांतिमें रहे । क्योंकि मनुष्यको समानता जब प्रिय लगती है ? वहाँ भी अक्सर दूसरा आगे बढ़नेके लिये प्रयत्न करता रहता है मिमीलिये अन्तमें वहाँ भी अविश्वास और विरोध आ जाता है । हरेक पल यही कहता है कि अपन बचाव तथा आरम-रक्षणके लिये हमें मितना तो करना ही पड़ता है । हा प्रबल राष्ट्रोंके बीच यदि अके छोटा-सा राष्ट्र हो तब प्रबल राष्ट्रों में विचार करते हैं — यदि मैं अके न लालू तो वह (दूसरा) तो ऊपर ही जिस न्या मिया और गाँवर यल्लि-उ बना हुआ वह मुझपर ऊपर आक्रमण

जिसलिये क्या बुरा होगा, यदि मैं ही यह अन्याय करूँ ?
जितने साम्राज्य बढ़ते हैं सब ज़िमी नियमानुसार बढ़ते हैं।

स्वार्थ और अन्यायकी यह प्रतिस्पर्धा आज यूरोपमें शुरू
हो गयी है और इसी सिद्धांतपर उसकी राजनीति
चलती है। किन्तु जिससे यह मान लेना भूल है कि यह तो
मनुष्य-स्वभाव ही है। भले ही यूरोप आज मुख्यस्थिति पाता
है किशोरशक्ति को सुधार मान ले पर मज्जा सुधार तो प्रेम-धर्म
और पड़ोसी-धर्ममें ही है। हमें थोड़ा पूर्वक अपने अंदर जिस
पड़ोसी-धर्मका विकास करना चाहिये। जो सज्जमता दिख
लाता हो अन्तर्गत साथ मैत्री और जो दुर्जन बन गये हों अन्तर्गत
साथ असहयोग करना यही प्रेम धर्मका नियम है। प्रेम-धर्म
सहानुभूति रखता है सहायता देता है परन्तु दोन बनकर
सहायताकी अपेक्षा नहीं करता। प्रेम-धर्म निर्मल होता है
जिनीलिय वह अमर्यादित है। हम जिससे प्रेम करते हैं यदि
उसकी शक्ति बढ़ती है तो हमें मय नहीं होता बल्कि हमारा
मित्र जितना ही निर्बल होया अन्तर्गत ही हम कमजोर माने
जायेंगे।

जहाँ अविश्वासका बातावरण है वहाँ अन्तर्गत दूर करनेक
लिये प्रेम अमाधारण धैर्य और सहिष्णुताका विकास करता
है नम्र बनकर वह बढ़ता है और असीम स्वार्थ-स्वाग करके
विजयका प्राप्त करता है। प्रेम-धर्ममें चाहे दिनक लिये गैराना
जकर पड़ता है किम अंतमें अन्तर्गत अक्षय विजय हानी है।
जिस प्रेम-धर्मका उपयोग कृदुम्बस लेकर राष्ट्रोंके संबंध पर्यन्त
फैला बना नहीं सब सुधारका मूल है और बही फल भी है।

४

सुधारकी सच्ची दिशा

मनुष्यकी स्वाभाविक वृत्तियाँ और अन्तर्गत सद्वृत्ति अन्तर्गत
दूसरोंके अनुकूल (समरस) जब हागी तब हीगी आज तो

वस्तुस्थिति वैसी नहीं है। आज तो भिन्न दोनोंमें विरोध है। आज तो जो भीठा लगता है वह पथ्यकर नहीं होता। जो सुखप्रद प्रतीत होता है वह कल्याणकर नहीं होता। जो प्रय होता है वह भय नहीं होता। कर्त्तव्य-मार्ग दुसदायी लगता है और नुस्खा मार्ग हितकर नहीं लगता। हमारी स्वाभाविक वासनाओं हमें आप-ही-आप पशु-जीवनकी ओर खींचकर ले जाती हैं। ईश्वरमे मनुष्यको वह विवेक-बुद्धि दी है जो पशुको नहीं दी। पशुओंको कार्याकार्य-विचार नहीं होता मनुष्यको यह विचार करना पड़ता है। पर हमारी वासनाओं कभी बार जितनी प्रबल हो जाती हैं कि विवेक-बुद्धिको दबाकर वे तर्क-शक्तिको अपने अधीन कर लेती हैं और यह तर्क-शक्ति न्याया न्यायका किसी तरह विचार न करनेवाले पट-भट्ट बकीलके समान वासनाओंका पक्ष लेती है। जो सुखकारी है वही कल्याणकारी है जो प्रय है वही ध्येय भी है—जिस तरहकी दसीलोंकी पूति करनेमें तर्क-शक्ति लपे जाती है। त्यागक आनन्दको भूलकर भोगको लालसा बुद्धि पाती है। तर्क-शक्ति भी मधुरबाणीसे कहती है—‘मनुष्य-जन्म भोग हीक लिये ता है नाना प्रकारक विषयाँका उपभोग करना मनुष्यका हक्क है। जिस अधिकार का काम भुंसे पकुर जुठाना चाहिय। भोग हीमें ता मानव जन्मको सफलता है। भोग भ्रमता ही मस्तुति है यही सुधार है। जिस तरह अयमको धर्म समझनेस आत्मवचना हाती है।

जिस तरह बहुतेरे भोग वासनाओंके बग हो गये हैं। अब तो किसे ‘भु’ कहें और किसे ‘बु’ कहें यही नहीं मूम पड़ता। भुच्छुद्धल भमका तर्क-शक्तिका आधार मिलनेपर आनेवाली अनर्थ परम्पराको कौन राक सज्जता है? जिसस आरम-सयम नहीं हो सक्ता भुंसे मनुष्य-जाति कितना ऊँचा पड़ा सक्ती है। जिसकी कल्पना जिस तरह हो सक्ती है। भैसे साग मानव-जातिके ध्येय कमे निर्दिष्ट कर सक्ता है? मानव-जातिके ध्येय क्या है? भुच्छु बुंसियाँ कौन-सी हैं? आर्य

जीवन कैसा होता है ? अर्हत् पदका मार्ग कौन-सा है ? समाज-का अन्तिम ध्येय क्या है ? आदि विषयोंका निर्णय ऐसे अतधिकारी मनुष्य नहीं कर सकते । घन-लोभके कारण कृपणका हृदय शून्य हो जाता है । भुखसे यदि ये ही सवाल पूछेंगे तो वह कहेगा—‘धन ! इच्छा ही तो मानव-जातिका ध्येय है । अर्थो हि कवस्वम्’ । शृङ्गार-पूर्ण अप्रियाओंको पढ़नेवाले स्त्री-संपद मनुष्यसे यदि हम पूछेंगे तो वह भी तुरन्त ‘रम्या रामा भवतनुम्भता’ की बातें करने लगेगा । जिसी तरह क्रिकेट और टेनिसक सलनेवाले कहेंगे कि हमारे खेलों हीसे मनुष्य की अन्नति होगी । गाना-बजाना ताश या शतरंज खेलना झूड़दौड़ करना और चिकिया पासमा अत्यादि धुनों हीमें जो लोग मस्त रहते हैं उनसे पूछा जाय कि ‘माइयो ! मानव जातिका अन्तिम ध्येय क्या है ?’ और फिर उनमेंसे अक-अकके जबाब सुन सिय जायें ।

असे अनासक्त साम्यस्थित मनवाले महात्मा ही जिन्होंने पशु-भूतिपर विजय प्राप्त की है और जिनका मन शुद्ध स्वार्थ के बग नहीं है यह ठीक समझ सकते हैं कि मनुष्यका ध्येय किसमें है । जिस तरह बाबी प्रतिबाबी यह नहीं दस सकते कि मुकदमेमें न्याय किसके पक्षमें है निष्पक्ष पक्ष ही उसे दस सकते हैं, जिसी तरह मानव-जातिका ध्येय क्या है, जिस बात-को निरपेक्ष और अमल स्मृतिकार—समाजक व्यवस्थापक—ही बतला सकते हैं । मनुष्य-जाति अपनी पशु-भूतिपर विजय प्राप्त करके कितनी ऊँची चढ़ सकती है यह बुद्ध, भीसा और सुकराम जैसे अनेक महात्माओंने प्रत्यक्ष उदाहरणसे बतला दिया है । संसारके सभी देशोंमें सभी जातियोंमें सभी धर्मोंमें और सभी युगोंमें ऐसे वही पुण्य उत्पन्न हुए हैं । जिसपरसे सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करनेपर भुख भूमिका तक पहुँच सकता है ।

कहा जाता है कि मनुष्य अपने पुण्यार्थसे क्या-क्या कर

सकता है वहाँतक अपनी अन्नति कर सकता है। भित्तिपट्टिका मधार्थ पाठ देनेके लिये तथा मनुष्यके लिये अक्षय्य ध्येय निश्चित कर देनेके लिये परमेश्वर अवतार लेकर मानव देह धारण करके, मानवी कृतियाँ करता है। जिस कथनका रहस्य भी यही है। ध्येय सा मानव-जातिकी अन्नतिकी परि-सीमा है। भूमि किसी खास समय आस व्यक्ति और अक्षय्य व्यक्तिकी शक्तिके अनुसार बदलना नहीं होता। अक्षय्य भी मनुष्य यदि जिस ध्येयको प्राप्त करके बिना दे तो समझना चाहिये कि वह असम्भव नहीं।

जिस दृष्टिसे देखें तो मनुष्यक जीवन अक्षय्य दो चिर होते हैं। अक्षय्य चिरपर विषय-सोपता आहार-निद्रा भय आदि पञ्चब्रह्म-परायणता स्वाध्याय तथा हठ होता है। दूसरी ओर निर्विषयता निर्भयता श्रद्धा-दमन परोपकार-परायणता और कर्तव्य होते हैं। हरेकको अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुसार जिस अक्षय्य ध्येयका अक्षय्य सानेका प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु अपने पीछे रहनेवालोंको अक्षय्य या पापी कह कर अक्षय्य हैं तो न भड़कना चाहिये। किसी प्रकार अपनेसे अधिक अक्षय्य व्यक्तिआके पागल कहनेसे भी काम न चलेगा। और चाह कुछ भी हो अक्षय्य ध्येयका किसी भी समय अक्षय्य या अप्राप्य करार देना तो मरामर भूल है। क्योंकि यदि हम ध्येयको अक्षय्य बार भी अक्षय्य अक्षय्य नीचे गिरा दें तो अक्षय्य ध्येयको नहीं बल्कि अक्षय्य अक्षय्य विनि-पात हो जायगा। जो अक्षय्य नहीं वह ध्येय क्या और अक्षय्य के लिये स्नेह दया सुख और जीवन जिन सभीको तिसाक्षय्य देनेको तैयार होने योग्य निष्ठा मनुष्यमें किस तरह अक्षय्य हो? जिसलिये ध्येयको अपनी अक्षय्य अक्षय्य न गिराना चाहिये। मरामर-देवताके समान हमें अक्षय्य अक्षय्य हानी चाहिये और अक्षय्य अक्षय्य अक्षय्य, अक्षय्य अक्षय्य और अक्षय्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जो

पीछे रह गये हो अन्हें आगे से जाना चाहिये । जो आगे बढ़ गये हों अन्हें अउसे भी आगे बढ़ना चाहिए । ध्येयको पा जाने तक किसीको कमी न रुकना चाहिये ।

सभी सामाजिक सुधार जिस अुष्प ध्येयकी कर्तव्यकी मिश्रित-निग्रहकी ओर समयकी दिशामें होने चाहियें । जो नीचे हों अन्हें ऊँचा झूठा देना चाहिये । जो ऊँचे हों अन्हें नीचे गिराना पवित्र ध्येयको छोड़कर सुलभ देन या मानकर अधोगामी ध्येयकी अपासना करना तां कुबार है सरासर अध-पात है ।

आजकल सुधार तो सब चाहते हैं परन्तु सु' और दु' के बीचके भेदको कोझी भी नहीं देखत । पिनस-कोइने जिसे अपराध नहीं माना कछ पास होकर आज हीस रौब मौठनेवाल डाक्टरोंने जिसे निपिछ नहीं समझा बहु सब करनेका हमें अधिकार है—हम वह जकर करेंग । पूव-परम्परा अुष्प मनोवृत्ति जिसकी रक्षा और विकास आजतक किया अुस पवित्रताकी भावना शाम्त्र (उड़ियोंका तो पूछना ही क्या) सबको हम घता घता देंग यह है आजकल हमारे समाज-सुधारकाकी मनोवृत्ति । यह मैं नहीं कहना चाहता कि अिनक कार्यक्रमकी समीक्षाएँ त्याग्य हैं मगर, अिन सभीकी जड़में जो वृत्ति है अुसक प्रति विरोध अवश्य है । अपने सभी सामाजिक व्यवहारमें न्याय और अुदारता हमी चाहिये । किसीपर टीका-टिप्पणी करत समय-मनुष्य प्राणी स्वस्वन्गील है अिन्द्रिय-समूह धलवान है परिस्थितिके सामने मनका निचय स्पिर रहना कठिन है जादि पर ध्यान देखर यदि किसीसे कोझी भ्रम हो गयी हो तो—अुस पर कोष और तिरस्कार हमें न करना चाहिये बल्कि दया अनुकम्पा और सहानुभूति हो दिखानी चाहिये । जहाँ सामाजिक अन्याय हो रहा हो यहाँ अनाथोंका रक्षण-पालन करना भी हमारा कर्तव्य है । सामाजिक आदर्शका नीच गिराना कल्पि योग्य नहीं है । और जो सुधार करत हैं बहु अेस होने

साहित्यमें जिनमें सामाजिक म्याय पवित्रता और सामर्थ्य बढ़े ।

५

संयममें संस्कृति

संयम संस्कृतिका मूल है । बिभासिता निर्बलता और अनुकरणके साक्षात्करणमें न संस्कृतिका बुद्धिमान होता है और न विकास हो । जिस तरह पश्चिमीय धर्म तक दृढ़ ब्रह्मचर्य रखनेवाले-को सन्तान मुदङ्ग होती है, उसी तरह संयमके आधारपर निर्माण की हुयी संस्कृति प्रभावशाली और दीर्घजीवी होती है ।

अपिप्योने तप और ब्रह्मचर्यके द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करके अथ अमर संस्कृतिको जन्म दिया । बुद्धकालीन मिश्रुओं और मिश्रुणियोंकी तपश्चर्याके परिणाम-स्वरूप ही अष्टोकके साम्राज्यका और आर्य-संस्कृतिका विस्तार हो पाया । शंकराचार्यकी तपश्चर्यासे हिन्दू-धर्मका संस्कार हुआ । महावीर स्वामी की तपस्यासे ही अहिंसा धर्मका प्रचार हुआ । सादा और संयमी जीवन बिताकर ही सिद्ध गुरुओंने पञ्चाशमें आप्रतिका । त्यागके शब्दके नीचे ही सीधे-सादे मराठोंने स्वराज्यकी स्थापना की । बंगालके चैतन्य महाप्रभु मृत्यु-शुद्धिके सिधे आनन्दयन्त्रासे अधिक भेक भी हर न रखते थे, अन्हीसे बंगालकी वैष्णव-संस्कृति विकसित हुयी । संयम हीमें नयी संस्कृतियोंको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य है । साहित्य म्यापन्य, संगीत कला और विविध धर्म विधियाँ संयमकी अनुगामिनी हैं । पहले तो संयम बर्कश और नीरस लगता है परन्तु अन्तीमें संस्कृतिके मधुर फल हमें प्राप्त होते हैं ।

जो लोग कलाके माध पसपात करके संयमकी अप्रतिष्ठा कर देना चाहते हैं व कलाको भ्रष्ट कर देते हैं और संस्कृति की जड़ ही पर कुठाराघात करते हैं ।

६

पञ्चममहापातक

शास्त्रोंमें अनेक तरहके पापोंका वर्णन है । झूठ बोलना हिंसा करना चोरी करना अत्यादि अनेक पाप तो हैं ही किन्तु पापोंका एक और भी प्रकार है जिसका नामोन्धार और भिषेय होना जरूरी है । ये पाप अिन सामान्य पापोंसे कम भयकर नहीं हैं । भयभीत दृष्टाई रहना अन्याय सहना पड़ौसीके साथ होने वाले अन्यायको चुपचाप बसते रहना आसस्यमें जीवन बिताना और अज्ञानको दूर करनेका प्रयत्न न करना—ये भी पाप महापाप है । अिनमें अपनी आत्मा होके प्रति द्रोह है । ससारमें जहाँ-जहाँ अन्याय होता है वहाँ-वहाँ अत्याचार करनेवाला स्वयं तो पापी होता ही है पर अत्याचारको सहसनेवाला भी कम पाप नहीं करता । जो मनुष्य स्वयं दुर्बल या डरपोक बनकर दूसरोंको अत्याचार करनेके लिये ललचाता है वह भी समाजका कम द्रोह नहीं करता । यात्री समूहमें जो मनुष्य सबसे धीरे चलता हो सभी समुदायको अुसकी चालसे चलना पड़ता है । निर्बल लोग संघकी गतिको रोकते हैं । ठीक विसी तरह जो लोग मनुष्यकी जीवन-यात्रामें छोटे और डरपोक होते हैं, वे भी मनुष्य की प्रगति को रोकते हैं । जैसे हम निर्बलोंका साथ पसन्द नहीं करते, वैसे ही अुन्नति-मार्गपर चलनेवाली आतियाँ निर्बल और अन्याय-सहिष्णु लोगोंको पसंद नहीं करतीं ।

परन्तु मानव-समुदायमें सुनाव करना किसीके हाथमें नहीं । अिस सबको तो अधिष्ठाता हीने तैयार किया है और वही स्वयं अिसका नेता भी है । अिसलिये जितना ही हम अिम संघसे पीछे रहते हैं अुतना ही हम अुस संघके नायकका द्रोह करते हैं ।

अज्ञानी रहना भी एक महापाप है । वह भी सघद्रोह या समाज-द्रोह ही होगा यदि हम अुतना ज्ञान भी प्राप्त न

करले कि जितना हमकर सकते हैं अथवा जितना जीवन यात्राके लिये निहायत जरूरी है। विशेषकर जिनके सिरपर अनेक मनुष्योंको राह बतलाकर अन्हें से खसनेका अंतरदामित्व पडा हुआ है जो समाजके अग्रगण्य नेता समझ जाते हैं यदि वे संसारकी स्थितिसे समाजके वर्तमान आदर्शसे और संसारके सम्मुख समुपस्थित बड़े-बड़े प्रश्नोंसे अभिज्ञ न रहें तो अन्हें वही पाप लागेगा जो समाजघातका होता है। हिन्दू-समाजमें राजा और साधु दोनों वर्ग समाजका अगुवापन करते आये हैं। एक धीमान् होता है दूसरा आक्रान्त। अब बड़े परिवारवाला है तो दूसरेका परिवार ही नहीं होता। एक सप्ताह बस कार्य करता है दूसरा सत्यक वस्त्र। एकमें प्रभुता होती है दूसरेमें होता है वैराग्य। असे परस्पर मित्र जीवन बाने और मित्र आदर्शवाले वर्गके हाथमें समाजका अगुवापन सौंपकर प्राचीनकालमें समाज-व्यवस्थापकोंने समाजकी उन्नति का मार्ग सुरक्षित कर दिया था। किन्तु दुर्भाग्यवश जिन दोनों वर्गोंको अपनी सम्पूर्णताके भ्रमने पछाडा। दोनों वर्गोंने अज्ञानी रहनेका पाप लिया और समाज-द्रोह अतक सिरपर आ पडा। साधुगण पददर्शन प्रवीण भले ही हों मले हा दृश्यन्य अन्हें मुष्ता हो किन्तु जबतक वे जगत्की परिस्थितिको न समझग समाजकी नब्बकी परीक्षा न कर सकें और समाजकी अुत्तकी अपनी भाषामें यह न समझा सकें कि अुत्तकी मुन्नति का मार्ग किस निशामें है तबतक वे अज्ञानी ही हैं। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ जैसे सामुज्यकी बितनी प्रतिष्ठा क्यों हुमी ? भिसीलिय कि वे अपने सामाजिक कर्तव्योंको यह धामसे थे।

राजावाकी भी यही बात है। पुरुषार्थ का सधमी आती है भिन्न बातका मूलकर सधमी भिन्नट्टी करनेकी धुनमें वे पुरुषार्थको गो बैठे हैं। समाजका नेतृत्व करनेके बखले अुत्त बवाने हीमें अुहोंने अपनी दक्षिणका व्यय किया है।

खून और पसीना

हम शरीरका मैस पानीसे धो सकते हैं कपड़ोंका मैस साबुनसे धो सकते हैं बर्तनोंके दाग बिमली या किसी अन्य कटावरीसे मिटा सकते हैं परन्तु सामाजिक दोष और राष्ट्रीय पाप किस पदार्थसे धोये जा सकते हैं ? अुसके लिये नाबिदक प्रायश्चित्त काफी नहीं है । नदियों या समुद्रमें जाकर स्नान कर लेनेसे काम नहीं चल सकता । वह तो अन्तःकरणके प्रायश्चित्तसे और आन्तरिक परिवर्तनसे ही साफ हो सकता है । राष्ट्रीय और सामाजिक पापको धोनेके लिये साधारण पानी काम नहीं दे सकता वह तो हमारे खून और हमारे पसीनेसे ही धोया जा सकता है ।

जिसेसे अीद्वरकी योजनाके अनुसार प्रत्येक धर्मकी स्थापनाके पूर्व मनुष्योंका गरम खून बहा है । खूनकी बीजा हीसे हृदय पलटता है और पाप बस जाते हैं । खून हीसे बिस्लाम-धर्म स्थापित हुआ खून हीसे यूरोप जैसी कड़ी जमीनमें बीसाबी धर्मकी जब मजबूत हुमी खून हीसे सिध धर्म फूला-फूला और अीद्वरेच्छा यही मालूम हाती है कि सत्पापहमी खून हीक द्वारा बिध्वनाम्य होमा ।

खून और पसीनेमें कोई भेद नहीं है । जैसे वृष और घी दोनों खून और मांसके निबोड है वैसे ही पसीना भी मनुष्यके खून हीका द्रव है । किसीपर जबरजस्ती करके अुससे सेवा करना अुसका पसीना बहाना अुसका बध करनेके समान ही है । फर्क यही है कि वह सुधरा हुआ सूक्ष्म और धीरे धीरे असर करनेवाला है । गुरुका-बागमें डब्बोंकी मारसे सरकार खून बहावे और हिन्दुस्तानकी धीम प्रजाको अपने समिक सर्बको पलानेके लिये निबोड डाले तो अुसमें कोई तारिबक भेद नहीं है । जिसे प्रकार अफ्रिकाके जंगली मनुष्योंको मारकर खाने और

मेढोंके गुलामाकी मजदूरीसे वैसे ज्ञानमें भी बोझीतास्त्रिक भेद नहीं । किसी देश की प्रजाका गुणम बना खुससे जबरदस्ती मजदूरी लेकर खुस दातबन्द बुझियोंकी हास्तकी पहुँचा देना भी खुसना ही बड़ा मनुष्य-वध है जिसना कि किसी देशपर धदाओ करके खुसक लाखों निवासियोंको जानसे मार डालने में है ।

दूसरेके खूनका सहानेक समान काओ महापाप नहीं । अिमी तरह इच्छापूर्वक और ज्ञानपूर्वक अपने खूनका बलिदान करनेक बराबर प्रायश्चित्त भी नहीं । जिस प्रकार दूसरेका खून लेनेके बदले खुसका पसीना लेनेका धक नया लूरीका संसारमें निकला है उसी प्रकार अपने खूनका बलिदान करनेके बजाय अपना पसीना द देना अधिक संग्राम्य प्रायश्चित्त है । पापी मनुष्य जब चाह तभी दूसरेका खून चर सकना है परन्तु दूसरेका पसीना तो उसके सहाय हीमें उसे मिल सकना है । अिमके बिपरीत, जहाँ प्रायश्चित्तमें हम खून देनेका तैयार हात हैं वहाँ हम अपना खून तभी दे सकत हैं जब आत्मि हमारी सहायता करे । पञ्जाब-सरकारकी सहायता नहाती ता दूरबीर अकालियों को धर्मके लिये अपना खून अर्पण करनेका अवसर कैसे मिलता ? परन्तु हम अपना पसीना ता जब चाहें स्वेच्छासे बलिदानमें दे सकत हैं । अिसमें अत्याचारको सहायताकी आवश्यकता नहीं । राष्ट्रीय प्रायश्चित्तमें आत्म-गुट्टिके लिय, स्वतन्त्रता देवाके प्रोत्थय बलिदानमें अपना पसीना अपना परिश्रम अविद्यान्त धर्म अर्पण करनेके लिय अपने प्रति निर्दय बनकर काम करने होका नाम रचनात्मक कार्यक्रम है । रचनात्मक कायकी बीरता बाहरस नहीं मोझती किन्तु अुमम अुसका महत्त्व कम नही हो जाता । अिमे स्वराज्यकी भावश्यकता हा खुस सना अपना खून देनेकी तयारी रखनी चाहिय और जबतक बेसा मौजा नही मिलता रचनात्मक कार्यमें अपना पसीना सहात रहना चाहिय, और माय ही यह निश्चय कर लेना चाहिय कि मैं न

तो किसीका खून बहानेका पाप करूंगा और मैं किसीसे
अमना पसीना बहा कर अनुचित लाभ ही जुठाऊंगा ।

८

अशियाकी साधना

दक्षिणमें ब्राह्मण-अब्राह्मणका झगडा किसने ही सपोंसे बल
रहा है । ब्राह्मणोंको तो हम जानते ही हैं । परन्तु अब्राह्मण
बग कहाँसे उत्पन्न हो गया ? अब्राह्मण नामकी कोई अके
जाति तो है नहीं फिर भी जब अब्राह्मण-यज्ञ बढ़ा हो गया
है । ब्राह्मण और अब्राह्मणके प्रद्वनम जरा भी पड़े बिना हम
कह सकते हैं कि ब्राह्मणार्थ ब्राह्मणत्वका अभिमान और अिस
बातका भान कि हम दूसरोंसे जुदे हैं अब्राह्मण-यज्ञके लड़े
होनेका एक कारण है । ब्राह्मणोंमें यह जातिका अभिमान तीव्र
होनेके कारण दूसरोंमें बिकट भावना पैदा हुई है ।

आजकी हमारी अशिया-विषयक भावना भी ऐसी ही है ।
जबसे यूरपक लोग भौतिक धास्त्रो और आसुरी राजनीतिमें
निपुण हुए तबसे अुन्हाने अपने अन्दर परस्पर मत्सर और
वैरके होत हुआ भी आमतौरपर अपनी अकेताको अच्छी तरह
कायम रक्खा है और यूरपके बाहरी चेष्टापर बाबा बाल दिया
है । जो लोग इस आक्रमणका अधिकार हुजे हैं अुनमें अपने अन्दर
अैक्य कर सेनेकी भावना आग-पीछ अवश्य हो जायगी और
यही कारण है जो हमारे अन्दर अशियाकी अकेताको कल्पना
पैसने लगी है । अशियाकी अकेताकी कल्पनाके मूलमें यदि
यही एक कल्पना हो तो भी वह अकेता सकारण तो मानी जा
सकती है परन्तु होगी वह कृत्रिम ही ।

परन्तु अशियाकी अकेता युरोपियोंके उत्कृष्ट जितनी आधु
निक नहीं वह तो बहुत ही पुरानी और गहरी है । चीन और
जापान मस और मध्यअशिया तुर्किस्तान अरबस्तान, ईरान
और हमारा हिन्दुस्तान—ये सभी देश प्राचीन कालसे परस्पर

अकृताके सुत्रमें बय हुआ है । पर उस वकत यूरोप जुदा मही था । यूरेशिया (यूरोप + अशिया) अक अखण्ड भूखण्ड था और यद्यपि आश्र यह उतना अखंड न रह गया हो ता भी अतमें यह अखंड ही होने वाला है ।

संसारका आजकी स्थितिका विचार करके भविष्यका विचार करत समय यदि समस्त संसारक माय हमारे सम्बन्ध ध्यानमें लहर विचार किया जाय तभी हमें अपना माग माफ दिलायी द सकता है । फिर हम बाहर संसारसे चाहे किउन ही भलग रहना चाहत हों तो भी संसार कहाँ अया है जा हमें भलग रहने द ?

बहुतरोंका कहना है कि यूरोपीय और हिन्दुस्तानी दानोंके हिन अक-दूसरक विरोधा हानके कारण दानों आवियाँ चाह जितनी सख परन्तु दोनोंका आवनके आन्तक विषयमें एतम तरहका अक मत है । पर दानोंके राजनीतिक आश्र और सामाजिक कर्ननाओंमें अभाव दृष्टिसे दया जाय ता अशियाके अय दनोंकी अपेक्षा साम्य और आकर्षण अधिक है । चानी और भारतीय एगोंमें जितनी सामाजिक अकृता है अुमसे कही अधिक यूरोपीय और भारतीय एगोंमें है । हिन्दू-धम और शिमाशी धम जिन दोनोंमें जितनी समानता है अुतना हिन्दू धम और शिस्लाममें नहीं । राष्ट्रीय अयवा सामाजिक आकर्षण दक्ते हुआ, हम अशियाके और देशाकी अपना यूरोपके अधिक निकट है । शिमालिय हमें यूरोपके साथ सख भगव कर भी अयना सम्बन्ध बढ़ाना चाहिय । अशियाभी अकृता भौगोलिक अयवा प्रादशिक अकृता है परन्तु यूरोपके साथ हमारे अकृता उच्च दृष्टिसे देखनेपर सांस्कृतिक अयवा जातीय है । अम अक सकड़ोक दा सिरे परस्पर-विरुद्ध दिशाओंमें हाते हुए भी जिस तरह सकड़ो ता अक ही है अुसी तरह यूरोपीय और भारतीय आदर्श परस्पर-विरुद्ध होनेपर भी अक ही मार्ग प्र धारणमें है ।

यह दलील नि सार नहीं है। यूरोपकी वर्तमान संस्कृति आसुरी है (राक्षसी नहीं) और हिन्दुस्तानकी संस्कृतिका आधार भूत आदर्श वैबी है—यदि यही मान लिया जाय तो भी देश और असुर दोनों भाबी भाबी है यह बात हमारे पुराणकर्त्ताओं ने ही स्वीकार की है।

यूरोपके साथ हमारा परिचय मजबूरीकी हासतमें बड़ा अस्वास्त्वि हम यूरोपके साथ थोड़े-बहुत अशोमें परिचित हुये। अिसी तरह अिस्लामके साथ भी हमारा परिचय अनिच्छापूर्वक ही हुआ और हम अिस्लामकी कृत्य करना सीखे। अब अीश्वर का सवाल है कि क्या ससारकी अेकताका अनुभव करनेके लिये बीनी संस्कृतिके साथ स्वेच्छापूर्वक परिचय प्राप्त करना है या वह भी मे खबरवस्ती करा दूँ? यदि अपने-आप परिचय बढ़ाओगे तो स्वतन्त्र रक्षा खबरन बढ़वाना चाहोगे ता मुसका मूल्य चुकाना पड़ेगा।

यदि अेगिया यूरोपके सर्वभक्षी वनलोभ और सत्तालामछे डरकर यूरोपका सामना करनेके लिये अेक हो जायें तो वह आसुरी सप हागा क्योंकि वह सप यूरोपकी तरह ही स्वार्थ मूलक होगा जिसमें क्षण-क्षणमें संघि और बिग्रहके रग बढल्लते रहेंगे और अन्तमें सारा यूरोप अेक तरफ और सारा अशिया दूसरी तरफ होकर अेक अैसा महायुद्ध या अतियुद्ध अेतगा कि जिसक अन्तमें मनुष्य-जाति और मानवी संस्कृतिका लगभग संहार हो जायगा और हजारों वर्षोंका मानव-पुरुषार्थ मटिया मेट हो जायगा। सर्वोदयका आदर्श अपने सामने रखनेवासे सोग भरा अैसा क्यों होने दगे?

यूरोपका बिरोध करें या न करें मनुष्यजातिकी अेकताका दुड़ करनेके लिये, दया-धर्म या धार्मिका साम्राज्य स्थापित करनेके लिये अशियाका अेक होजाना चाहिये।

और अशिया अेक होना चाहता भी है। हमारा अिसाफत का आन्दोलन अेक तरहम अशियावी अेकताकी नींव थी।

मिस्रामके साधका हमारा सम्बन्ध पुराना है ।

हम सोचाने अशियाकी अकताका प्रारम्भ सिन्धुफनसे किया है । किन्तु यह अकताकी कल्पना कुछ आजकी नहीं है । विविधधर्मी धर्म राजाओंने चीनसे मिस्रतक और अन्तर द्रुमस कुछ नहीं मो लका और बालीद्वीप तक सांस्कृतिक ऐक्यता स्थापित करनेके प्रयत्न किये हैं । और मिस्र अकतामें आय सामानोंने अपने पड़ोसियोंको बिजना दिया है अतना अनेक पाम से नि सकोर लिया भी है असबसे लिया है अपनी उच्च अभिरक्षिक अनुसार पसन्गी करके । मैं मानता हूँ कि धर्मराज का राजप्रामाण बनानेकासा ममासुर चीनदेशीय वा और अमकी स्वापत्यकता बृहस्पति तथा दानाबाय दोनोंकी कलाम भिन्न थी । यह भी माना जाता है कि चीन देशकी चित्रकारी और नृत्यकलाका प्रभाव आग्नीयों कलामोंपर हुआ होगा ।

अनिहामकारोंका रायक अनुसार अक समय अशियाकी कला-कृतसनाका केन्द्र समरबन्ध और खोशानके आसपामक देशमें था । वहाँसे व्यापारके अनेक मार्ग भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाते थे । अक रास्ता चीनकी ओर जाता था अक हिन्दुस्तानकी ओर जाता था अक मिस्र देशमें जाता था और अक युरोपमें । मिस्र तरह वाणिज्य-व्यापारके साथ मस्त्वतिका भी बिनिमय मिस्र मध्यमूमिमें होता था । अनादनकी भिच्छा हुआ नि धाड़े निनेंजि सिय य तिर अक-नूसरेस अलग हाकर कुछ-कुछ भिन्नताकी सिता प्राप्त करें । बस तुरन्त ही बाण्ड ममुद्र मुहसने लग और अमुहोंने अमू दरिया और सर दरियाक देाको मुजाड कर दिया । आज भी जब मारी माँधी जाती है और बालके परत मुड़ जात है इस प्राचीन सम्बृतिक अवशेष वही भिन्ने सगत है ।

मार्म लोग पहलेश ही यात्रा प्रवीण थे । पहाड देखते ही मुहें अम पार करनेकी भिच्छा हुमे बिना नहीं रहता । नदीको दगर तो अमके अमुगम-स्थानकी खोज लगाव बिना नहीं

रहते । आर्योंका देवता जिन्द्र भुज्युको समुद्रके पार ले गया था । आर्य राजा हरेक राजसूय-यज्ञमें चीन और मिस्रके राजाओंका आमन्त्रित करते थे । अशोक राजाने चारों दिशाओंमें बौद्ध-धर्मका प्रचार करने तथा अभयका सन्देश सुनाने व स्मिये आर्यों और अर्हंतोंको भेजा था और अम दिव्य सन्देशका सुनने-के बाद दमामय धर्मराज भगवान् बुद्धके देवकी यात्रा करनेको दिग्विगन्तके यात्री आने लगे थे ।

ऐशियाकी अकेला माघमेकी सम्पूर्ण सक्ति धारण करने वाला तत्त्व तो महायान बौद्ध-धर्म ही था । महायान बौद्ध-धर्म में भगवान् बुद्धका अपदेश, सन्त्रमार्गकी लोकप्रिय विधियाँ और अनेक देवी-देवताओंके बून् तो थे ही पर जिसके अपरान्त दुःख सन्तप्त मनुष्यको दिलासा देनेवाला और परोपकारी और पुष्ट्योंको आकर्षित करनेवाला धाधिसत्त्वका आदर्श भी था । जब महायान पन्थका प्रसार हुआ तब हिन्दुस्तानका चीन देशके साथ औराम बेबिद्रया आदि पश्चिम ऐशियाके साथ और स्वर्णद्वीप (ब्रह्मदेश) के साथ सम्बन्ध बरके आगिनक समान हो गया था । जिसके बाद धर्म-साम्राज्यकी कल्पना अरबस्तानमें पहुँची और मुसलमानों ने तीन सत्रोंमें अकेस्वरवाद (बहुमत) और ममताका सन्देश पहुँचाया । अब भी यह धर्म मध्यऐशिया और अफ्रिका में नये-नये लोगोंको अल्फातामा और अस्तके नवी साहबके चरणोंमें लानेका काम करता है । जब मुसलमान धर्मका अग्रय हुआ तब हिन्दुस्तानके धर्म-धुरन्धर शाहजान और धर्मजान तिव्वत और चीनमें जा बस गये । हिमासय और हिन्दूकुशके भुसपार अनेक मठोंमें हिन्दुस्तानके प्राचीन संस्कृतिक साक्षी रूप साहित्य स्थापत्य और कलाके नमूने मौजूद हैं । हिन्दुआ की परमपवित्र यात्रा कैलास और मानसरोवरकी है । जिसके द्वारा हिन्दू और चीनी संस्कृतिका सङ्ग-देन अखण्ड रूपमें होता रहता था । आज भी यह कुछ अंशोंमें चल ही रहा है । जहाँ जहाँ हिमासय पार करके अस्तरकी ओर जानेके रास्ते हैं

वहाँ-वहाँ आर्य-संस्कृतिके धाने—सीर्षस्थान बढ़ हैं ।

हिन्दुस्तानका सिप्य-ममूह जितना हम जानते हैं उससे कहीं बड़ा है । सोमो और आपानो लोग हिन्दुस्तानको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं । तिब्बत-यात्राके माग फिरम जुझने लग हैं । हिन्दुस्तानका अहिंसाका माग सारे संसारमें विख्यात हो गया है । यूरोप और अशियाके बीचके युद्धमें यदि हम अहिंसा-धर्म को प्रधान पक्ष लेंगे तो चीन देशमें उसका प्रभाव आपानके ऊपर पड़ेगा और जिस तरह बखल अशियाकी ही नहीं बल्कि सारे संसारकी अकला करनेके लिये आवश्यक वायुमण्डल तैयार हो जायगा ।

अशियाको अक्षय अंक हो जाना चाहिये किन्तु किम लिये ? स्वार्थके लिये नहीं बल्कि युरापमें जो स्वार्थ-परायण साम्राज्यवादकी बाढ़ आ गयी है उसका नाश करनेके लिये और धर्मका साम्राज्य स्थापित करनेके लिये ।

६

वीर-धर्म

हिन्दुस्तानका महत्वपूर्ण प्रश्नमें दरिद्रताका प्रश्न अंक है । जिस जनताको दो बार पेट भर खानेका भौ न मिलता हो उस का पित्त किसी दूसरे प्रश्नकी ओर बस जा सकता है ? अंगकी फाकेकड़ीको दूर करनेपर ही जनताका कुछ मूख पड़गा और अपने जीवनमें सुधार करने योग्य उत्साह उसमें आयेगा । मुबहस नाम तक, एक बीमामेस दूसरा बीमासे तक और जन्मम मरण तक यही एक प्रश्न गरीब भारतका सम्मुख हमेशा खड़ा रहता है कि गरीबीका कैसे दूर किया जाय ?

इहानमें कई स्थानों पर ममुष्य कितना हो बीमार हो जाय, वह अर न्ति भी क्या नहीं सम्भवता न विद्यामिति हो क्योंकि यदि वह आराम से तो पाय क्या ? यदि डाक्टरका कुछ पैस हो तो एक दिनकी अपनी घुराव काटकर भी

है। गरीबीके कारण मनुष्यका सजीव भी होता है। वह अन्यायको अपनी आँखों देखता है किन्तु उसका प्रतिकार नहीं कर सकता। वह देखता है कि मैं ठगा जा रहा हूँ किन्तु फिर भी वह भुम ठगाभीस सभ नहीं सकता। गरीबीके कारण भूमे स्वाभाविक दया माया और ममता भी छोड़ देनी पड़ती है। पुत्र-स्नेहवत् पाले हुए बच्चा और भैंसोंसे भूनके बूतेके बाहर भूसे काम लेना पड़ता है। निर्वय बनकर भून्ह मारना-पीटना भी पड़ता है।

सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि गरीब दहाड़ीको किसी क्रिय अक्सर ज्यादा कष्ट करना पड़ता है कि वह गरीब है। किसीलिय भूसस अधिक सुदलिया जाता है क्योंकि वह गरीब होता है। भूसे रिबत देने पर ही नई-नई मविषाओंका साम मिल सकता है। बाइये या कहना चाहिये कि वह गरीब होता है किसीलिय भूसे और भी अधिक गरीब बनाना पड़ता है। भिसबा भूपाय क्या है? कानूनक द्वारा जिसकी रक्षा नहीं हो सकती। बड़े-बड़े अधिकारियोंके दौरोसे भी उनकी हासत नहीं मुघर सकती। भूस्ते अम प्रसर्पोंपर तो गरीब बगार का काम करती है। भूमी माग गरीब किसानोंपर अपना निर्बाह करते है। गरीब किसान मारी दुनियाका सिखाता है परन्तु भूस बभारेको जिसानेवाला कोभी नहीं मिलना।

जिमका भूपाय क्या है? हम तो जिसका अक ही भूपाय बतला सकते है और वह है म्बावसम्भन। किन्तु जिस मनुष्य पर सारा समाज अवलम्बित है उसके सम्मुख स्वावलम्बनकी बात करत हुये हमें लज्जा आनी चाहिये। अस बभारेके अपने बाल-बच्चे होत हैं माँ-बाप और भाभी-बहन आदि होत है और वह यह मव कुछ भिमलिय सह रता है कि भुनकी दुग्गा न हाने पाव करना वह कमीका या तो मागी बन गया होता या ममूत रमाकर बैरागी ही हा गया होता। भूसेके दुस्तों

को कौन दूर कर सकता है ? हम जो कुछ भी मान्योसन करते हैं वह सब सहरोंमें ही होता है । व्याख्यान सहरों हीमें होते हैं शिक्षाके लिये खर्च सहरों हीमें होता है समाचार-पत्र भी सहरों हीमें पढ़े जाते हैं दवा-दरपनकी सुविधाओं भी तो सहरों हीमें होती है मुक्त और सुविधाके सभी साधन सहरों हीमें मिल सकते हैं । तब जिन देशोंमें गरीबीका आघार पड़ा है ?

विचार करनेसे ज्ञात होगा कि गरीबीकी औपधि गरीबी ही है । जिस देशमें करोड़ों मनुष्य भूखे रहते हैं उनका भूख मिटानेके लिए हजारों और लाखों युवकोंको स्वेच्छापूर्वक धर्म कत्तास गरीबी धारण करनी चाहिये । अथवा शिक्षाके कारण जिस विषयमें हम बहुत ही कायर बन गये हैं । आज तो मनुष्य मृत्युसे, धर्म-द्रोह और दस-द्रोहसे जितना ही डरता है जितना कि वह गरीबीसे डरता है । जिस देशमें स्वेच्छापूर्वक धारणकी हुई गरीबीकी प्रतिष्ठा सर्वोपरि थी आज उसी देशमें हरेक शिक्षित युवक कायरकी तरह गरीबीसँ भामता फिरता है । उसमें अकाल फैला हुआ था । लोगोंका दुःख अमहान् था । भूख दसहर साधु टॉन्स्टॉप बार-बार छोड़कर भिक्षुमंगा घन गया । बाह्य दृष्टिसे देखनेमें उसका क्या लाभ हुआ ? गरीबीकी सक्षामे और भी भेक आवस्यो बढ़ा दिया वस यही न ? अर्थ धान्नी जिसका उत्तर नहीं दे सकते क्योंकि उनके शास्त्रमें आत्माके लिये स्थान ही नहीं । पर टॉन्स्टॉपने भिक्षारी घनकर संसारकी आत्माको जागृत किया संसारके अशोचारात्ममें बूढ़ हुए हजारों मनुष्योंका फाँकेकटोका और उसका मूलमूल कारण अन्यायका प्रत्यक्ष वर्णन करा दिया ।

शिक्षित लोग कहते हैं—'आपकी बात सत्य है किन्तु हमारे बास-बच्चोंका क्या होगा ? जिस स्थितिमें रहनेकी उनको पड़ गयी है उसमें तो उन्हें रक्षना ही होगा ' मुपित है कि हमारे विचारोंके कारण वे कष्ट-जरूर । जिसमें कुछ भी अनुचित न

विभाग करके बेल्ल पर जिस तरह संसारमें कदापि शान्तिका साम्राज्य नहीं होगा ।

यूरोपमें थोड़ेसे लोगोंके हाथमें सारा धन है । निस्सन्देह यह स्थिति विपम है । परन्तु यदि निर्धन लोग भूखे भड़ियकी तरह हमेशा भुस सम्पत्तिको लूटने की नाकमें रहेंगे तब तो वह विपमता और भी भयकर हो जायगी । पर यह बात निर्धनोंके कयालुमें नहीं आती । भुममें अितनी यद्धाका उदय होना जरूरी है कि धनिकोंको बिना लूट भी भुमकी और धनिकोंकी विपमता घूर हो सकती है ।

जिसके लिये निर्धनोंको कुछ करना चाहिये । अगर ब लोभका त्याग करके सन्तोषको अपनाव और अपनी आवश्यक तायाको घटाकर अत्यन्त स्वाभाविक जरूरतोंको स्वा वलम्बन द्वारा पूरी करना सोख लें तो वे बेल्ल कि न ता धनवानोंके पाम अधिक धन जा रहा है और न वहाँ एकत्र ही हो रहा है । बड़े पैमाने पर वस्तुओंको पैदा करना और झुन्ड देश-देशान्तरोंमें भेजना यथथा संशोधनमें विराट रूपस धन विभाग करना ही इस विपमता का मूल कारण है । जिस विपमताको दूर करने हीके लिय स्वदेशी धर्मका अवतार हुआ है । स्वदेशीय पारनसे जोभी भी मनुष्य धनि न हो सकना और न भुस किसी मनुष्यके निर्धन होन का ही डर है । यदि हम एक जगह अँधा टीला बनात है तो दूसरी जगह अवश्य ही गड्ढा बन जाता है । जहाँ सघनताका अभाव है वहीं निर्धनताका भी अभाव हो सकता है । सम्पत्ति और दारिद्र्य दोनों सनातन पड़ीसी है । दानाका नाश अक साथ ही हो सकता है ।

परमात्माकी कृपा होगी तो अबस आगके जमानेके लोगों में दो वर्ग होंगे—एक धन-परायण और दूसरा सन्तोष-परायण । एक हागा साम्राज्यवादी और दूसरा होगा स्वराज्यवादी । एक होगा सत्तावादी और दूसरा होगा सत्यवादी । एक आगक

जमाना चाहेगा दूसरा दयाका दीप्त स्रोत बहावेगा । अन्न
अहंकारवादी और दूसरा संतोपी ।

११-

प्रतिष्ठाकी अस्पृश्यता

हवा सबच जलती है सभीको छूती है और ससारकी
अकरूपता सिद्ध करती है । स्वर्गक देवता और कब्रके मुँदे हवा
के बिना अपना काम चला सकते हैं । दोनों अस्पृश्य हैं । ईश्वर
की विच्छा है कि पृथ्वी सा पृथ्वी ही बनी रहे । परन्तु कभी लोग
अपने धक्करका विचारके प्रबाहुमें बहकर मिस भूलोकपर स्वर्ग
और नरककी मूर्ति लड़ी कग्ना चाहते हैं । मुरदा सटता है
मुरदेमें प्राण नहीं होता मुरदा पृथ्वीके लिये भाररूप है इस
लिये जूम काँची छूता भी नहीं बिसना ही नहीं बल्कि दफनाकर
या आगमें जलाकर लोग जूस नष्ट कर देते हैं । देवता हमें छू
नहीं । परन्तु व मिस भूलोकपर बिखरत भी तो नहीं । जब अन्ह
बिखरना होता है तब व मानव-रूप धारण कर लेते हैं, व
मनुष्योंके-स व्यवहार करते हैं सभी वे मनुष्योंमें हिलते-मिलते
हैं । जय ये (देवता) असा करनेसे अिन्कार करते हैं तब भुन्ह
पथर बनकर मन्दिरोँकी कैद भुगतनी पड़ती है ।

हमारे समाजमें किसी तरहक दो अस्पृश्य-वर्ग दखनेमें
आते हैं । एक अन्नधजोंका और दूसरा अपधजों (वाह्यणों) का ।
जिम प्रकार बेड़—मेहतर अस्पृश्य हैं अुसी प्रकार धंकराचार्य
भी अस्पृश्य हैं । हम दोनोंकी धणियोमें बैठकर भोजन नहीं
करते । हम दोनोंसे हाथ-भर दूर रहते हैं । दोनोंका बदका अधि
कार नहीं और बिसलिये दोनोंको समाजमें स्थान भी नहीं है ।
समाजमें भुनकी स्थिति लतरनाक है । यदि अन्हें समाजमें घामिल
करना हो तो पहले भुनकी मिस अस्पृश्यताको दूर करना जरूरी
है । यदि अस्पृश्यजोंका समाजमें अस्पृश्यही बनाय रखनेगता
सामाजिक दुर्गन्ध बनेगी । भुस दूर करनेक दो ही अुपाय है ।

या तो हिन्दू-समाजसे अनुकूलनका दिया जाय या मुन्हें स्पष्ट मान लिया जाय । ब्राह्मण-संस्कृतिके प्रतिनिधि संकराचार्योंको भी चाहिये कि वह मनुष्यकी तरह समाजमें बिबरें, समाज की स्थितिपर विचार करें और धर्मोपदेश द्वारा समाजकी सेवा करें । यदि वे ऐसा न करते हों तो मुन्हें चाहिये कि वे छोगों की सेवा—पूजामात्र ही स्वीकार करनेवाली मूक-मूर्ति बन जाय । वेद-विद्याको भी हममें किसी तरह बना रक्ता है । वेद अतिने पवित्र है कि अनुकूलनार्थ तक नहीं किया जा सकता । संस्कृत-भाषाकी भी यही दशा हुई है । संस्कृत तो ठहरी रहता बौकी वाणी, मनुष्य-जुसका व्यवहार कैसे कर सकते हैं ? फलतः उसे बड़ निजोब बीतप्राप्त हो हो जाना पड़ा । जिस प्रतिष्ठा की अस्पृश्यतासे देववाणीको और भूदेवाक समुदायको कौन सुबारेमा ? जब शरीरके पैर और सिर भी समाज-सेवाके लिये अयोग्य हो जायें तब मनुष्यको पेटके बल चलना पड़े तो क्या आश्चर्य ?

समाजको पग न बनाना हो तो संकराचार्योंका अपनी अस्पृश्यताका त्याग कर समाजमें सम्मिश्रित होना चाहिये और अन्यबौकी अस्पृश्यताको दूर कर मुन्ह भी शामिल कर लेना चाहिये । ऐसा करनेसे ही धार्मिक अन्धकार नष्ट होगा और हिन्दू-धर्मक सिरका काला धब्बा मिटेगा । केवल दिन-विहाड़े मनासे जलाकर बननेसे क्या होना-जाना है ?

१२

अन्त्यज-सेवा

जिसमें समभाव न हो वह सेवा नहीं कर सकता । मम भावक मानी दया नहीं । परोपकार करनेकी वृत्ति नहीं । दुर्बुद्धि या घिष्टता नहीं । समभावका अर्थ है प्रेमकी समानता समभाव का अर्थ है आदर समभावका अर्थ है जाननेकी मिष्टता समभावका अर्थ है भावना और आदरकी समानता ।

अन्यथाकी या अन्य किसी भी जातिकी सेवा तो समभाव ही होनी चाहिये। अहङ्कारी मनुष्य तिरस्कारस भी सेवा कर सकता है अज्ञानी मनुष्य अज्ञानतासे भी सेवा कर सकता है परन्तु वह सच्ची सेवा नहीं। अंक बहानी है कि अंक स्त्रीने देखा कि धूमके सोये हुये पतिके गालपर अंक मक्खी बठी है अंसने सेवा भावसे उस मक्खीको बितने जोरसे अंक चाटा लगाया कि पतिके गालसे धूम निकलने लगा।

हमारा यह-जीवन हमारा धर्म हमारा साहित्य भिन्न सभीके विषयमें अपने दिलमें असीम तिरस्कार धारण करते हुये और उसे प्रकट करते हुए भी कितने ही गोरे हमारी सेवा करते हैं। हम सभी मानते हैं और हमें अनुभव भी है कि भुनकी यह सेवा हमें कितनी प्यारी और हितकारिणी है। जो रोग परदेससे आकर अपने बड़प्पनका सिक्का जमाना चाहते हैं उनको सेवासे हमें अधिक या बौद्धिक लाभ भले ही होता हो किन्तु उससे हमारी आत्माका-हनन ही होता है। जो हममें मिल कर रहते हैं, हमें समझनेको काशिश करते हैं हमारे बड़प्पन काम करते हैं वे ही हमारे गुण-दोषको समझ सकते हैं। हमारे गुणोंसे वे प्रसन्न होते हैं और मुन्हें बिकसित करनेके लिये सहायता करते हैं। हमारे दोषोंसे वे कर्ग्विभक्त होते हैं और मुन्हें दूर करनेके हमारे प्रयत्नोंमें प्रेम और समभावसे सम्मिलित होते हैं। वे हमारे सबक बने रहना चाहते हैं, उनको बड़प्पन देनेपर भी वे कुछ ग्रहण नहीं करते।

जो समझानी होते हैं अज्ञानी और सापरवाह होते हैं वे अच्छे-बुरेकी अपनी कगोटी साध-साध लिये घूमते हैं। जो मुन्हें अच्छा न समझा हो उसे हमें छोड़ देना चाहिये फिर चाहे वह हमें कितना ही प्रिय और अनुकूल हो। उसी प्रकार बिना वे प्रिय समझें वह हमें कितना ही अनुचित लगता हो तो भी हमें उसे धारण करना चाहिये। बिकनी मिट्टीके पाइको

तोड़कर हमें यदि खुसका साँप या गणपति बनाना है तो पुरानी आकृतिको तोड़कर हम खुसे बिमकुर नया आकार देना पड़ता है। उसी प्रकार वे हमारे समाजको भी समझते हैं। किन्तु समाज कुछ चिकनी मिट्टी तो है नहीं और यदि हो भी तो विदेशियोंके लिये कदापि नहीं।

जो नियम हमारे लिये है वे ही अन्त्यजोंके लिये भी हैं। आराम कुर्सी पर बैठकर हम निश्चित करते हैं कि अन्त्यजोंके लड़कोंका जिस तरहकी पोशाक पहननी चाहिये, उन्हें मितने बिपय जानने चाहिये, अितने बुधोग सीखने चाहिये, और अमुक-अमुक बिचारोंको छोड़ देना चाहिये अथवा धारण कर लेना चाहिये। अन्त्यजोंके लड़कोंको लेकर चिकनी मिट्टीके समान उन्हें अपनी कल्पनाके अनुसार हम बना लेना चाहते हैं।

अन्त्यजोंका और हमारा धर्म एक ही है। हम दोनों एक ही समाजके अंग हैं। हम अनावि कालसे अन्त्यजोंके प्रत्यक्ष गुरु नहीं तो मुनके अगुआ तो जरूर ही हैं। वे हमारे आश्रित हम मुनके अतिमावक यह सम्बन्ध बना आता है और किसी लिये अन्त्यजोंके अछारका मार्ग निश्चित करनेका अधिकार और योग्यता भी हम रखते हैं। जिस तरहका यदि कोई दावा करे तो वह अयोग्य होगा, सो नहीं। परन्तु बहुतेरे अमीर बनकर अन्त्यजोंका अछार करते-करते अपने समाजसे भी अलग हो गये हैं। हमने अपने धर्म-बिचार निश्चित नहीं किये। हमने अभी यह भी निर्णय नहीं कर लिया कि सामाजिक जीवनमें कौन-सी व्यवस्था अच्छी है। जितना पुराना है मुस सरस्वती तोड़नेमें एने हैं परन्तु हमने अभीतक जिसका बिचार नहीं किया कि खुसकी जगहपर नया क्या अुपस्थित किया जा अथवा क्या अुपस्थित किया जा सकता है। और अन्त्यजों गुप्त-दुष्प में मुनके सहयोगी बनकर मुनकी जीवन-यात्रा आसान बनानेकी बात तो हमें अभीतक सूझी भी न थी। कि हम किस तरह मुनके भाग्य बिधाता बनेंगे ?

मिसका यह अर्थ नहीं कि, हम अनको सेवा नहीं कर सकते पर सेवा करनेसे पहले हमें अनको हृदय और अनकी स्थितिको अच्छी तरह ज्ञान करना जरूरी है। अनकी शक्ति और असक्तिकी परीक्षा करनी चाहिये। अनकी धारणाओंके आधारभूत कारणोंको खोजना चाहिये। अनकी धारणाओं और रिवाजोंको जड़में महत्वपूर्ण कारण होते हैं। हमें मिसका पता लगाना चाहिए कि वे कारण कौनसे हैं जिन्होंने अन्त्यजोंमें थोड़ा-बहुत काम किया है अनका अनुभव प्राप्त करके अत्यन्त नम्रता और समभावसे अन्त्यजोंकी संवादाधीनगणना करना चाहिये।

अन्त्यजोंकी अस्पृश्यता दूर करते ही अनके कितने ही दोष तो अपने-आप ही दूर हो जायेंगे। स्पृश्य समाजमें भेद-भेदाप बढ़ते ही अनायास उन्हें कितने ही सुस्कार मिलने लग जावेंगे। अनका भुत्तरवायित्व बढ़ जायगा जिसको पूरा करनेके लिये हमें उन्हें समभावपूर्वक सहायता करनी चाहिये।

और सासकर यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जहाँ-जहाँ अन्त्यज स्पृश्य समाजमें सम्मिलित हों, वहाँ-वहाँ अन्त्यजोंके स्वभावमें अितनी नम्रता और ममरुता तो जरूर बनी रह कि सभी साम अनका प्रेमपूर्वक स्वागत करने लग जायें। अन्त्यज-नेत्रकोंको मिसकी खूब चिन्ता रखनी चाहिये। अन्त्यजोंकी जातिसे प्रति जो नङ्क तिरस्कार है उसके म्यामपर यदि पड़े-सिधे अन्त्यजाकी मुदतताक कारण समाजमें मदा तिरस्कार उत्पन्न हो जायगा तो मुस दूर करना कठिन होगा। कभी लोगोके मनमें अस्पृश्य भावनाका अद्य भाष भी नहीं होता गन्दे धाराब पीनेवाल मेहनरोकि साथ भी वे बन्धु प्रेम से बातें कर सकते हैं निन्तु भीसे लोगोके लिय भी कभी बार कितने ही पड़े-सिध और मुदत अन्त्यजोंकी मापा और मुसकी अपेक्षाओं—आपायें धरदात करना कठिन हो जाता है। यह दोष है मुस पिताका जो हमने अुहें दी है। हम अन्त्यजोंको स्पृश्य-समाजमें स्थान दना चाहते हैं, वह अनका

हुक भी है। छूत पाप है, अश्याय भी है परन्तु भुस अश्याय को दूर करनेके लिये स्पृश्य समाजका अपमान कर उनके साथ तुच्छताका बर्ताव करके अन्त्यज अपना कल्याण नहीं कर सकते। अभीतक जिस नम्रताको भय या अज्ञानके कारण किया था उसीको अब उन्हें ज्ञानपूर्वक और स्वाभिमान पूर्वक धारण करना चाहिये। वहम और भय का त्याग करना चाहिये, नम्रताका नहीं। जिस प्रकार बकील-मुअक्कलका पक्ष लेकर भुसे झगते हैं उसी प्रकार यदि हम अन्त्यजोंका पक्ष लेकर उन्हें स्पृश्यवर्गके साथ लड़ा देंगे तो उससे कुछ दिन तक हम अन्त्यजोंमें भले ही लाक-प्रिय हो जायेंगे और स्पृश्य समाज भी हमसे डरने लग जायगा किन्तु यह समाज-सेवकका पवित्र कार्य कदापि न कहा जायगा।

मनुष्यके लिये यदि अत्यन्त पवित्र और अत्यन्त सूक्ष्म कोभी वस्तु हो तो वह है मनुष्य-समाज। भुस समाजकी व्यवस्थामें हम जब कभी हाथ डालेंगे तब हमें वह अत्यन्त बड़ा आदर भक्ति और नम्रतापूर्वक करना चाहिये। नहीं तो समाज-द्रोहका पाप हमारे सिरपर आ बैठेगा। समाज-द्रोह प्रत्यक्ष भीस्वरका ही द्रोह है। यदि जिसमें भय भी हो तो भीस्वरकी दृष्टिसे प्रभु-द्रोहकी अपेक्षा समाज-द्रोह ही अधिक लराब है। प्रभु-द्रोह पर समा किया जा सकता है—सदा होता रहा है। परन्तु समाज-द्रोह—बन्धु-द्रोहका प्रायश्चित्त जमानों तक—घताश्रियों तक करना पड़ता है।

१३

मजदूरोंका धम

कहा जा सकता है कि अभीतक हिन्दुस्तानमें अधिकांश मजदूरोंका धर्म ही नहीं था। वेदाका बड़ा हिस्सा किसानों ही का था। आज भी किसानोंका धर्म ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार यूरोपमें मजदूरोंकी समस्या प्रधान है उसी

कारें लगा-लगाकर गीत गाते हैं । जुलाहा भी करघेकी तारुपर अपने कण्ठकी तानें छेड़ता रहता है । कारीगरोंको कलाकी अुत्तम वस्तु तैयार करनेमें निर्वोप आनन्द मिलता है । मितना ही नहीं बरन् खतमें काटनेके समय या घरमें छत या दीवार-के पल्लस्तरकी टिपाई करते हुए भी मजदूर लोग संगीतका आनन्द लेते हैं । आज मजदूर-वर्गको मिलमें जिस तरहका काम करना पड़ता है वैसा आरम्भवाती कामपहलेके मजदूरोंको कभी न करना पड़ता था । जिसको खुद परिधममें आनन्द नहीं मिलता उसे आनन्दप्राप्तिके बाहरी साधन खोजने पड़ते हैं और ऐसी मजदूरी करने वालोंका समाज यदि सत्कारी न हो तो वह स्वभावतः चाहे जहाँसे और चाहे जैसा आनन्द प्राप्त करनेको लल बेगा ।

×

×

×

आमतौरपर मजदूरी या शरीरिक परिधम पबित्र-से-पबित्र अुद्योग है । आरोग्य वीर्यायुष्य और स्वतन्त्रता ये मजदूरीके आशीर्वाद हैं । मजदूरका जीवन दूसरे सभी अुद्योगोंकी तुलना में अधिक मिथ्याप होता है । यदि मजदूर सन्तोषी हो तो वह आसानीसे अस्तेय और अपरिग्रह व्रतका पालन कर सकता है और मुसीमें अहिंसा भी वर्तमान है ।

मजदूरका पेशा जितना पबित्र है अतना ही सम्मानपूर्ण है । हाँ हरअक मजदूरको जिस बातका विचार जरूर करना चाहिये कि वह किस कारण-वश और किन खतोंपर मजदूरी कर रहा है । मजदूर जो काम करता है या जिस वस्तुको बना रहा है वह समाजके लिये आवश्यक और धर्मको स्वीकार होनी चाहिये । मजदूरको मजदूरी करते हुअे अपनी स्वतन्त्रताको खो न बैठना चाहिये ।

×

×

×

फ्रीजी अफ्रीका दक्षिण अफ्रीकाके मजदूरोंको गिरमिटिया कहते थे । य अपने छठ या अपने कामका चुनाव स्वयं नहीं कर

सकते थे। वे शतोंसे वर्ष हुए होत थे। इसीलिए उन्हें दासबन्ध कहते थे। कुली अपमान-जनक नाम है। दमिक मजदूरी लेकर कार्य करनेवालेका मजदूर कहते हैं। बम्बयीमें मजदूरोंका नाम कामदार है। यह शब्द मजदूरोंमें जाग हुआ आत्म-सम्मानका सूचक है। अमेरिकामें मजदूरोंको 'हल्पस' या मददगार (सहायक) कहते हैं। जो मनुष्य मजदूर रहता है वह परावर्ण्यही है पगु है और मजदूर अपने कामका पारिधायिक सेते हुआ भी समाज-सेवा करता है यह भाव जिस नाममें समाविष्ट है। मराठी में मजदूरोंके लिये पुराना शब्द 'गड़ी' है। गड़ी अर्थात् दोमन मिट्ट या सापी। परिश्रममें सब समान है परिश्रममें भ्रान्त भाव वर्ण-मान है और जो हमारा काम करता है वह हमारे ही वर्गका हमारी बराबरीका है। वह सभी अर्थ-साया गड़ी शब्दमें एक-बन्ध आ जाती है।

दूसरे भुद्योगवाले मनुष्य जैसे समाजहितका विचार करते हैं और अपना कर्तव्य समझकर बहुतेरे सार्वजनिक कर्तव्योंका पालन करते हैं उसी तरह मजदूरोंको भी करना चाहिये। जिस मनुष्यको परिश्रम करनेका अम्मास है वह सब पूछा जाय ता समाजका राजा है। वह किसीपर निर्भर नहीं, बल्कि दूसर सोम ही उसपर निर्भर रहत है। हर एक मजदूर इस बातका जानता है कि ऐसेवाले लोग उसपर अवलम्बित रहत हैं। वह इस बातको जानता है इसीसे वह कई बार दूसरका असुविधा में देखकर अधिक मजदूरी पानेका प्रयत्न करता है। यदि मजदूर सोम अपने हितको खगाकर समझ लें तो अपिवाधिक मजदूरी प्राप्त करने हीमें अपनी शक्तिका व्यय न करके अपनी प्रतिष्ठा और अपनी स्वाधीनताको बचानेका प्रयत्न करेगा। एक मामूली क्लर्ककी अपेक्षा साधारण मजदूर अधिक बचाता है अधिक उपयुक्त होता है और अपनी तुलनामें अधिक स्वतन्त्र भी होता है। परन्तु फिर भी क्लर्क अपनी सामाजिक प्रतिष्ठाकी रक्षा कर सकता है, किन्तु मजदूरसे अभी यह नहीं

होता ।

सब देखा जाय तो मजदूर मासिकका आधित नहीं बल्कि मासिक ही मजदूरोंका आधित है । मजदूरोंकी पूजी मुनके शरीरमें है और वे उसे अपने साथमें लेकर भूम सकते हैं उन्हें जिसका बोझ नहीं लगता । मासिक तो पूजीके साथ बँधा होता है और जिसीसे वह संगठित मजदूरोंके सम्मुख आधितके समान ही होता है ।

×

×

×

मजदूरोंका मुहार तो तभी होगा जब वे जिस बातको जानने लग जायेंगे कि हम समाजकी किस तरह विशेष सेवा करते हैं—समाज-व्यवस्थामें हमारा स्थान कहाँ है तथा समाजके प्रति हमारा कर्तव्य क्या है । पर जिस ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मजदूरोंको शिक्षाकी आवश्यकता है । जिस बातको मजदूर घिसासे ही समझेंगे कि देशकी और संसारकी स्थिति कैसी है और उसमें मजदूर अपनी जिच्छाके अनुसार चाहे जो काम किम तरह कर सकत हैं । मजदूर-वर्ग समाजको आबाद भी कर सकता है और बरबाद भी ।

१४

धमजीबी बनाम बुद्धिजीबी

मुवर-निर्वाह अथवा समाज-सेवाके जो अनेक पेटे हैं मुनके सामान्यतः दो भाग किये जा सकते हैं । अर्ध धमजीबी और दूसरा बुद्धिजीबी । किसान ज़ुल्माहा राज बड़भी मुहार, नामी धोबी बुम्हार गुमास्ता ये तो धमजीबी हैं । और बसर्क अम्पापक, सरकारी अधिकारी ग्यायाधीश बकील ये सब बुद्धिजीबी हैं । पुरानी पूजीके सूदपर अपना जीवन-निर्वाह करनेवाला अर्ध तीसरा वर्ग भी होता है जो बिना किसी सेवाके समाजमें रहना चाहता है । पर न तो उसे पेशाकार न समाज-सेवक कहा जा सकता है । पेशाकारोंके तो केवल

दो ही वर्ग हैं—धर्मजीवी और बुद्धिजीवी । जिसने ही देशोंमें भिन दो पेशोंमेंसे धर्मजीवी पेशोंकी अपेक्षा बुद्धिजीवी पेशोंकी अधिक ऊँचा माननेकी घुरी प्रथा हो गयी है ।

हमारे देशमें तो धर्मजीवी पेशोंका विष्कसल नीचा माननेकी प्रथा बहुत पुराने समयमें ही चली आयी है, जिसके कारण हमारे समाजकी असीम हानि हुई है ।

आज भी मनुष्य शिक्षा किसी गृहस्थसे प्राप्त करता है कि वह परिश्रम करनेकी सजासे बच पाय । अंक दिन मैं अपने स्नानगृहकी सफाई कर रहा था । यह देख अंक धर्मो पदेस्तक मुझसे कहने लगे 'अजी ऐसा काम करना था तो मितनी अङ्गरेजी क्यों पढ़ी ? चार बिस्म पढ़ है फिर भी अपने हाथसे काम कर रहे हैं । मुझे खड़ी धाम मालूम होती है । भारतवर्षकी अतीत मय्यताके दिनोंमें हम लोगोंने जिस तरहके विचार न थे । भारतवर्षके विद्यार्थी अपने गुरूके मकान पर पशुके जैसा कठिन काम करते । पर अभी वे जबते न थे और न क्षमति थे । मुनिपशुके आचार्य अपने गुरूके घरपर गौजोंको चराते थे । स्वयं श्रीकृष्ण गुरूगृहपर राज जंगलसे लकड़ीके बोझ लाते थे । विद्यापीठों में बृद्ध पण्डित लोग अन्न-काष्ठ मिलनेपर पत्तमें बजाते थे । काही यह नहीं सोचता था कि धारीरिक परिश्रम करनेसे बुद्धिका कोशी उपयोग नहीं होता या प्रतिष्ठाकी हानि पहुँचती है । धारीरिक परिश्रम अंक आवश्यक यज्ञ समझा जाता था । जिससिये लोग सी-सी बर्ष तक जीते रहते थे । राजा और सरदार लोग भी कम-से-कम अपने धारीरिकी सर्व-कार्य-क्षम बनाये रखनेके लिय सभी प्रकार के परिश्रम करनेकी आदत बनाये रखते । धर्म-शास्त्रकारोंने भी आज्ञा दी कि बंजर जमीनकी साड़ी बगीचा कट जानेपर उस पर पहला हल तो राजाको ही चढाना चाहिये । क्योंकि तब राज्यका आद्य विज्ञान राजा ही समझा जाता था ।

जिस प्रकारके कारण धर्मजीवी और बुद्धिजीवी दोनोंके बीच

पूरा-पूरा सहयोग रहता था। बुद्धिमान् और धनवान् लोग भी परिधमी कारीगर वर्गकी कृपार करत और दोनों वर्गोंके बीच संस्कारोंका आदान-प्रदान होता रहता था। किसी जमानेमें यह कहावत प्रचलित थी कि 'किसानके शरीरपर सयी हुआ मिट्टीको झाड़ दो और उसे राजवस्त्र पहना दो कि वह राजा बन जाता है।' राजोचित संस्कारोंकी स्पूनता भुसमें कभी रहती ही नहीं थी। जिससिन्धु उस जमानेमें प्रत्येक जातिमें शूर सरदार पैदा होते थे। बेसकी रक्षा किस होगी यह कारर चिन्ता किसीके चित्तको स्पर्शतक नहीं कर सकती थी। और जाति-जातिके बीच सायद ही कभी बैमनस्य होता था।

पड़े लिख और अपढ़ोंका भेद तो बला ही भाया है। पर धमजीबी और बुद्धिजीबीके बीच भी बहुत कम आकर्षण और सम्बन्ध देखा जाता है। बुद्धिजीवी मनुष्योंको शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता हा थमजीबीयोंको बुद्धिका प्रयोग नहीं करना पड़ता हा सो बात भी नहीं। फिर भी उपर्युक्त भेद तो स्पष्ट ही है। आधुनिक सामाजिक धार्मिक अभवा राजनतिक जागतिके जमानेमें अक वर्गके प्रयास दूसरे वर्गतक पहुँच ही नहीं पात। धमजीबी लोगोंने मुल-दुर्गोंके बिषयमें बुद्धिजीवी सापबाह तो होते ही हैं पर भुससे भी विषय बात तो यह है कि वे भुससे अनभिज्ञ भी रहते हैं। बुद्धिजीवी लोग अपने आन्दोलनोंका रहस्य धमजीबी लोगोंको अन्तकी अपनी भाषामें नहीं समझा सकते। जिससिन्धे आज भारतवर्षमें हम अपनी शक्तियोंको अकल नहीं कर सकते। जिसका तो अक ही मुपाय है। धमजीबी लोगोंने शिक्षा

का प्रचार, और बुद्धिजीवी लोगोंमें परिधमकी प्रतिष्ठा। धमजीबी लोगोंमें शिक्षाका प्रचार करना चाहे बितना ही कठिन हो वे ता भुसके सिन्ध तैयार ही हैं। यदि बुद्धिजीबी लोग श्रम करनेको तैयार हा जायं ता भुसके सिन्धे भी कोमी काम असम्भव नहीं रहेगा। पर उनको यह बात बड़ी अटपटी

मासूम होती है। जिन दो वर्गोंके बीच जबतक सहयोग नहीं होगा तबतक किसी कार्यका लिये राष्ट्रकी क्षमिका अकेल करना दुष्कर है। पारिरीक परिधमके प्रति तिरस्कार होना बुद्धिजीवी लोगोंके लिये एक सार्वत्रिक रोग-सा हो गया है। यह अनुमान नहीं अनुभवकी वाणी है। प्रजाकी क्षमिका विकास और संगठन करनेका यही एकमात्र अुपाय है।

१२

धर्म-संस्करण

कुछ लोग कहते हैं कि हमारा धर्म सबसे पुराना है जिस लिये वही सबसे अच्छा है। दूसरे कहते हैं कि हमारा धर्म सबम आज़िरी है मत वह सबसे अधिक ताज़ा है। कोभी कहते हैं कि अमुक पुस्तक भाष धर्म-ग्रन्थ है जिसलिये अुसमें सब-कुछ आ गया है। ता दूसरे कहते हैं कि फर्का किताब परमात्माका ससारको दिया हुआ सबसे आज़िरी धर्म-ग्रन्थ है जिसलिय अुसका अुत्सधन नहीं कर सकते।

सनातन-धर्मी दूसरी ही तरहसे बिचार करते हैं। सृष्टिका आदि और अन्त हो सकता है। धर्म-ग्रन्थोंका भी आदि और अन्त हो सकता है। पर धर्म तो अनादि-अनन्त है। जिसलिय वह सनातन कहा जाता है। सनातनके मानी क्या हैं ? जो जिस सृष्टिके प्रारंभके पहले या और जो अुसके अन्तके बाद भी कामम रहेगा वही सनातन है। जिस अर्थके अनुसार ता आत्मा और परमात्मा ही सनातन माने जा सकते हैं।

पर सनातनका और भी एक अर्थ है। जो नित्यनूतन होता है वह स्वभावतः ही सनातन है। जो जीर्ण होता है वह मर जाता है। जो बदलता नहीं वह मड जाता है। जिसकी प्रगति नहीं है उसकी अयोगति बनी बनामी है। अंधी हवा बंदू पैदा करती है। जो पानी बहता नहीं है वह स्वच्छ नहीं रहता। पहाड़ के पत्थर बदलते नहीं जिसलिये व धीरे धीरे

पूर्ण हो जाते हैं। भास पुनः भुगतो है। ब्रह्मकी वनस्पतियाँ प्रति बप भरती है और फिर दूसरे साल भुगतो है। बावस छासी होते है और फिर भरते हैं। प्रकृतिको नित्यनूतन होनेकी कला अवगत हो गयी है जिसलिये वह हमेशा नवयीवना दीसती है।

सनातन-धर्मके व्यवस्थापक जिस सिद्धान्तको जानते थे जिसीलिये पुरुषधर्मके अनुसार मनुष्योंने मिल्न-मिल्न धर्मोंकी रचनाकी है। वे काल-महात्म्यको जानते थे जिसीलिये वे काल पर विजय प्राप्त कर सके। धर्मके आध्यात्मिक सिद्धान्त अचल और अटल है। पर धनका व्यवहार देस-कालके अनुसार बव सना पड़ता है। जिस बातको जानकर ही धर्मकारोंने हिन्दू धर्मकी रचनामें परिवर्तन-तत्त्व शामिल कर दिया। जिसी कारण यह धर्म सनातन पद प्राप्त कर सकता है। अनेक बार वह क्षीण प्रायः जरूर हुआ पर निष्प्राण कभी नहीं हुआ। मनुष्यकी जड़ताके कारण कभी बार धर्ममें गन्धी भी फैल गयी, पर बिना किसी विप्लवके वह फिर पुनरुज्जीवित हो उठा।

सामाजिक व्यवस्था अथवा धार्मिक विधियोंके पालनमें कालानुकूल परिवर्तन होना आवश्यक है। पर जबसे हिन्दू समाजमें अबुद्धिने अपना अड्डा जमाया है तबसे वह (हिन्दू समाज) ऐसे परिवर्तनोंको सख्त दृष्टिसे देखने लग गया है। अंक ऐसी नीति और नास्तिकता हमारे अन्दर भुस गयी है कि हम हर समय कहने लग जात हैं कि 'जबसे पूर्वजोंकी अपेक्षा हम अधिक होशियार हो गये ? पूर्वज तो त्रिकालका विचार कर सकते थे। धनकी रचनामें हम कहीं कौओ परिवर्तन कर बैठेंगे तो शायद हम संकटमें पड़ जायग।' सब पूछा जाय तो जिस तरह परिवर्तनसे डरना सनातन धर्मके स्वभावके ही विपरीत है। विचार-हीन मुष्कृत परिवर्तनकी सो हिमायत ही कौन करेगा? पर अज्ञानक कारण डरकर निष्प्राण स्थिरताको सोचना पुरपार्थ नहीं, बल्कि मृत्यु ही है।

अपनेको छोड़कर दूसरेका ग्रहण करना भेद भ्रमसंग बात है और अपना तथा परकीय धर्म दोनोंको जाँचकर सुस्पष्टाकर अंत में आवश्यक परिवर्तन करना दूसरी बात है । प्रत्येक जमाने में मनीन-मनीन संयोग हमारे सामने उपस्थित कर परमात्मा हमारी बुद्धि-शक्तिको आजमानेके लिये सामग्री उपस्थित करता रहता है और उसके द्वारा धर्मके मूलमूल सिद्धान्तोंका परिचय हममें पुनः-पुनः आप्रथ करता है । बाह्य आकारमें यदि बार-बार परिवर्तन न हो तो आन्तरिक सच्चे स्वस्वका दर्शन असम्भव हो जाय । यदि हमारे जमानेमें पूर्वजोंकी ही बुद्धि-हीन नकल हम करते जायें कुछ भी नवीन न करें, कोभी आविष्कार भी न करें, तब तो कहा जायगा कि हमारी चताब्धि बाध्या साबित हुआ ।

प्राचीनकालसे ही हमारे देशमें मिश्र भिन्न धर्म और जातियाँ भेदत्र रहती आती हैं । प्रत्येक बार भैसे सहवासके कारण हमें मिश्र-मिश्र धर्म प्रवचन करना पड़ है । आवश्यकता मुसार भेद ही धर्म सिद्धान्तको भिन्न-भिन्न चकाओं और दोषोंको दूर करनेके लिये भिन्न-भिन्न चक्षोंमें जनताके सामने उपस्थित करना पड़ता है । और मिस्रीलिय यह धम अनेक काण वासे तेजस्वी रत्नाके समान अविनाशिक दिव्य बनता गया ।

विदेशी सत्ताकी अधीनतामें रहते समय धर्मको अत्यन्त हीन और कृत्रिम वायु-मण्डलमें दिन काटना पड़ता है । विरोधी सोय जिस समय आक्रमण करते रहते हैं तब भी धर्म-संस्करण का स्वाभाविक विकास मंजो होता । यही डर लमा रहता है कि हम कोभी परिवर्तन करने जायें और अग्री समय विरोधी लाग हमारी कमजोरी देखकर मर्माघात कर बैठें तब ? परकीय सत्ता स्वभावतः मममात्र-गुप्त होती है । वह कड़िको पहचानती है प्राणको नहीं । मिस्रलिये वह कहती है 'पूर्वापरम तुम्हारे आरिजाय बसे जाय है, मुग्हीकी रत्ना की जायगी । नवीन प्रयाक

तुम दाऊ नहीं कर सकते न अपने स्थानसे कहीं भी मिथर-भुधर हट ही सकते हो। पुराने कलैवरको हमारा समयदान है। तुम्हारे प्राणको राज्यमान्य कर दें तो हमारे प्राण कैसे टिके रहेंगे ?' जिस तरह समभाव-शून्य तटस्थतामें सड़ी रुढ़ियाँ भी कानूनकी वृजिम सहायतासे टिकी रहती हैं।

'हिन्दू-शा पर अमरु करत समय पद-पदपर यही स्थिति बिप्लव उपस्थित करती है। स्याममूर्ति सेल्गमे जिस स्थितिके खिलाफ कभी कार अपनी अप्रसन्नता और जोर विरोध प्रकट किया था। प्रत्येक धर्म और समाजकी अपनी व्यवस्थामें हेर फेर करनेका अधिकार होना ही चाहिये। पर यह करनेके लिये आवश्यक स्वाधीनता, मुक्तता और योजना-शक्तिका भी समाज में होना नितान्त आवश्यक है। बड़े-बड़े त्याग करके हमें भुसका विकास अपने अन्दर अवषय ही करना चाहिये। यदि हिन्दू-धर्म की प्राणवान बनाये रक्ता है, संसारमें भुसे अपना स्वाभाविक स्थान पुनः प्राप्त करना है यदि भुसे समाज-कल्याणकारी बना लेना है तो धर्म-पूर्वक हमें भुसकी गंदगीको धा डालना चाहिये। कितने ही ऐसे कालात और रुढ़ियाँ हमारे समाजके अन्दर बढमूल हो गयी हैं कि जो धर्मके समातन सिद्धान्तोंके विपरीत हैं और जो समाजकी प्रगतिमें बुरी तरह बाधक हो रही हैं। उन सबकी हमें अकदम होखी कर देना चाहिये।

अस्पृश्यता भिन्हीं बुराभियोंमेंसे एक है। जातिमत अहंकार और संकुचित प्रेम दूसरी बुराभी है जहाँ रुढ़िके नाम पर धर्म भमका जून हो रहा हो जहाँ आत्माका अपमान हो रहा हो जहाँ धर्म-प्रीतिके बदले लाक्षण और नीतिको स्थान दिया जा रहा हो वहाँ धर्मको भिन बुराभियोंके खिलाफ अपनी बलुन्द आवाज मुठानी चाहिये। सरकारी अधिकारियोंको रिश्वत देकर अपना मतलब गाँठनेवाले लोग भेक परमात्मा-को—जीस्वरकी छोड़कर भुनने बदले जनैक भयानक शक्तियोंको लाक्षण दियाया धर्म समझने लग पये। तामापाह

तामसी समझी जीग बुधामद-प्रिय अधीनतामें रह कर नामर्द बने हुअे लोग देव-देवियोंका स्वभाव भी बुन्हीके जैसा समझकर अुनके प्रति भी भय-भूतिका विकास करने लगे और जिस तरह अपने धर्ममें धर्मका साम्राज्य स्थापित किया । सत्यनारायणसे लगाकर कासमैरब तक सभी देवताओंको हमने डरावने गुडे (Bulies) बना रक्खा है । आकाशस्य तारे, ग्रह जंगलके वृक्ष और वनस्पतियाँ हमारे भाभी-भाबू, पम्प-पत्नी अया और सध्या, अतु और संवत्सर प्रत्येक स्थानपर, जहाँ कि हमारे अापि अुस परम मंगलकी प्रेममय विभूतियोंका साक्षात्कार करते थे अुमके साथ आत्मीयता और अेकताका अनुभव करते थे, वहाँ आज हमें भय और भयके सिवा और कुछ दीक्षता ही नहीं । धर्मका दूध और बुद्धात्त सत्व जानने वाले सोम हमारे विधि-विधानोंके अन्दर रहनेवाले काव्यको देख सकते हैं । परन्तु अज-जन-समुदाय काव्यका सनातन सिद्धान्त अपना वास्तविक स्थिति मानकर विचित्र अनुमान करते हैं और बुन्हीको पकड़ बैठकर धर्मका कार्य विफल कर डालते हैं ।

आज हिन्दू-धर्मका अुत्कर्ष चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यका यही प्रथम कर्तव्य है कि यह जिस बातकी कोशिश करे कि अुसके समाजमें धर्मका दूध स्वरूप प्रकट हो । जिसमें सत्यकी निर्भयता नहीं त्यागकी अवलमन्दी नहीं बुद्धात्ताकी सुगन्ध नहीं, वहाँ धर्म है ही नहीं—यह हमें निश्चित रूपसे समझ लेना और लोगोंको समझाना भी चाहिये । हिन्दू धर्मके संस्करणका समय आ गया है क्योंकि अुसपर जमी हुई गर्द अुसका नम घोंट देनेको है ।

जीवित इतिहास

१

जीवित इतिहास

हिन्दुस्तानका इतिहास हिन्दुस्तानियों द्वारा नहीं लिखा गया है। रामायण और महाभारत आदि के अर्थ में इतिहास नहीं कहे जा सकते। आधुनिक दृष्टि से तो वे इतिहास हैं भी नहीं। रामायण महाभारत और पुराणों में भी कुछ इतिहास तो है लेकिन वह सब धर्मका निश्चय करने के लिये दृष्टान्त रूप है। महादश और बीपर्वण इतिहास माने जा सकते हैं पर वे संकाके हैं और उनमें इतिहासकी चर्चा बहुत कम हुई है। काश्मीरकी राजतरंगिणी के विषय में भी यही कहना पड़ता है। तो फिर हमारा इतिहास क्यों नहीं है? जीवन के किसी भी अंगको स्वीजिय हम लोगों ने उसमें असाधारण प्रवीणता प्राप्त की है फिर भी हमारे यहाँ इतिहास क्यों नहीं?

इतिहासका अर्थ है, मनुष्य-जाति के सम्मुख उपस्थित हुए प्रश्नों का अनुसन्धान। जिसमें से कुछ प्रश्नों का निराकरण हुआ है और कुछ अभी तक अविनिर्णीत हैं। जिन प्रश्नों का निश्चय हो सका है वे अब प्रश्न नहीं रहे, उनका निराकरण हो चुका, अब वे समाज में—सामाजिक जीवन में—सत्कार रूप से प्रविष्ट हो गये हैं। जिस प्रकार पचे हुए अन्न का रक्त बन जाता है, उसी प्रकार जिन प्रश्नाने राष्ट्रीय भाव्यता या सामाजिक संस्कारका रूप प्राप्त कर लिया है। पाना हजम

हो जानेपर मनुष्य जिस बातका विचार नहीं करता कि कल खुसने क्या लाया था । ठीक इसी तरह जिन प्रश्नोंका भुत्तर मिला चुका है, खुनके विषयमें भी वह खुदासीन रहता है ।

अब रहा सवाल अनिर्णीत प्रश्नोंका । हम लोग परमार्थी हैं । हम अनिर्णीत प्रश्नाको कागजपर लिखकर छोड़ देना नहीं चाहते । अनिर्णीत प्रश्नोंमें मतभेद होते हैं । जितने मतभेद होते हैं, उतने ही सम्प्रदाय हम सहे कर देते हैं । वेदीके अनुष्चारमम मतभेद हुआ तो हमने मिल्न-मिल्न साक्षात् सझी कर ली । ज्योतिषमें मतभेद हुआ तो वही भी हमने स्मार्त और भागवत अंकादधियाँ असम-असम मामों । दर्शनशास्त्रमें तत्त्वभेद मालूम हुआ तो हमने द्वैतवादी तथा अद्वैतवादी सम्प्रदायोंका निमोण किया । आहार या व्यवसायमें भेद हुआ तो हमने मिल्न-मिल्न जातियाँ बना ली । जहाँ सामाजिक रीति-रिवाजोंमें मतभेद हुआ वहाँ हमने सट अपजातियाँ सझी कर ली । अगर एकठोसे कोमी आदमी किसी रिवाजका तोड़ दे या बड़े-से-बड़ा पाप करे, तो उसके सिवा भी प्रायश्चित्त है । सिर्फ उसके लिये नञी जाति सझी नहीं का जाती । महान् ऐतिहासिक और राष्ट्रीय महत्त्वकी घटनाओंके इतिहासका हम लोग त्योहारों द्वारा जाग्रत रखते हैं । किसी तरह हरजक सामाजिक आन्दोलनके इतिहासको अम आन्दोलनके केन्द्रको तीर्थका रूप देकर हम शोभाने जीवित रखा है । जिस तरह इतिहास लिखनेकी अपेक्षा इतिहासको जीवित रखना अथात् जीवनमें अम अरिस्तार्थ कर दिखाना हमारे समाजकी खूबी है । बिबड़ोंके बने कागजपर इतिहास लिखकर अम सुरक्षित रखना अच्छा है या जीवनमें ही इतिहासका संग्रह करके रखना अच्छा है ? क्या यह कहना मुश्किल है कि जिन सोनोंमेंसे कौनसा भाग अधिक सुधरा हुआ है ? जबतक हमारी परम्परा टूटी नहीं थी तबतक हमारा इतिहास हमारे जीवनमें जीवित था । आज भी यदि सोनोंके रीति-रिवाजों, अनुष्चारों

नामों, जातीय संगठनों और त्योहारोंकी खोज की जाय तो बहुत-सा इतिहास मिल सकता है हाँ यह ठीक है कि वह अधिकांशमें राजकीय या राजनीतिक नहीं बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय होगा। क्या इतिहासके संशोधक इस दिशामें परिश्रम न करेंगे ?

२

धारदाका मुद्बोधन

हम नहीं जानते कि किस नवमीको मुरेनि धारदाका मुद्बोधन किया था। लेकिन वह अत्यन्त शुभ सुमंग और कल्याणकारी मुहूर्त होना चाहिये। समृद्धिदायी वर्षके बाद जो घांति जो निर्मलता जो प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है उसीमें देवताओंको धारदाका दर्शन हुआ। भरतीने अभी हरा रंग नहीं छोड़ा है परिपक्व धान्य मुबर्णवर्णकी शोभा फैला रहे हैं—असे समय पर देवोंने धारदाका ध्यान किया। सञ्जनोके हृदयोंके समान म्बच्छ पानीमें बिहार करनेवाले प्रसन्न कमल और आकाशमें अनन्त काव्यके फव्वारे छेड़नेवाला रसस्वामी चन्द्र ये दोनों जब अंक-दूसरेका ध्यान कर रहे थे उसी समय देवनि धारदाका आह्वान किया। धारदा आभी और असे पृथ्वीके वदन-कमल पर मुहास्य फैला। धारदा आभी और बनध्रीका गौरव खिल उठा। धारदा आभी और घर-घर समृद्धि बढ़ गई। धारदा आभी और बीणाका शंकार शुरू हुआ संगीत और मृदय ठौर-ठौर आरम्भ हुआ।

धारदाका स्वरूप कैसा है ? बाला ? मुग्धा ? प्रीता ? या पुरधी ? धारदा मञ्जुसहासिनी बाला नहीं है मनमोहिनी मुग्धा नहीं है विलासचतुरा प्रीता नहीं है। वह तो नित्ययोजना बिल्कुल स्तन्यदायिनी माता है। वह हमारे साथ हैसती है अस्ती है मगर वह हमारी सखी नहीं माता है। हम असेक साथ भासो-चित्त बीड़ा कर सकते हैं लेकिन हम यह न भूलें कि हम माताके

सम्मुख लक्ष्य हैं। माता अर्थात् पवित्रता वस्तुसत्ता, कारुण्य और विश्रब्धता। माता अर्थात् अमृत-निधान। 'न मातु परदैवतम्। यह वचन किसी नृपदेशप्रिय स्मृतिकारका गढ़ा हुआ नहीं है। यह तो किसी मातृ पुत्र धर्म धामकी अमृतवाणी है।

धराचर सृष्टिकी नेकताका अनुभव करनेवाले हम आद्य सन्तान तक ही धर्ममें अनेक अर्थोंको देखते हैं। धारदा यानी सरोवरमें विराजमान कमलोंकी गोमा। धारदा यानी शत्रु पुनो और दोबालीकी क्रान्ति। धारदा यानी यौवनसहज शोभा। धारदा यानी अपिलक्ष्मी। धारदा यानी साहित्य-सरिता। धारदा यानी ब्रह्मविद्या बिच्छक्ति। धारदा यानी विदबसमाधि। असी ही यह हमारी माता है हम अस्त्रके बासक हैं। कितनी धन्यता ! कितनी स्पृहणीय पदवी ! कितना अधिकार ! और साथ ही कितनी बड़ी दीक्षा !

धारदाके स्तन्यका स्पर्श जिन होठोंको हुआ हो व होठ अपवित्र वाणीका अनुच्चारण नहीं करेंगे निबल्लताके बचन मुँहसे नहीं निकालेंगे द्वेषका सूचन तक न करेंगे पापको नहीं सँवारेंगे पीरपकी हत्या नहीं करेंगे और भुग्धनाको धोखा न देंगे।

धारदाके मन्दिरमें सर्वोच्च कला हो कलाके नामपर विचरनेवाली विलासिता नहीं। धारदाके भवनमें प्रेमका बामुमंडल हो बेवस् सौन्दर्यका माहन नहीं। धारदाके भुवनमें प्राणोंका स्फुरण हो निराशाका निश्वास नहीं। धारदाके सतावृत्तियोंमें विदबप्रेमका संगीत हो परस्पर अनुनयका मूर्सेता पूर्ण कलबुज्जन नहीं। धारदाके बिहारमें स्वतंत्रताकी धीरोदात्त गति हो उद्देश्यहीन और स्तम्भनशील पद नय नहीं। धारदाके पीठमें ब्रह्मरसका प्रबाह हो विषय रसका अग्राद नहीं।

माता धारदा ! आनीर्वाद दे कि हमें तेरा स्मरण अर्थात् बना रहे ! जब हम अधिकारी बनें तो तू हमें अपने वर्णन दे ! अगर हमारा ध्यान अविचल रहे हमारी भक्ति अंकाव भुक्त बने तो तू हमें अपनी दीक्षा दे। और जब

निर्देश यह है कि 'भरा' अक्षय जीवन समाजके लिये है ।

श्रीकृष्ण भी पुरुषोत्तम हैं लेकिन असंग युगके । श्रीकृष्णमें यह वृत्ति दिखानी देती है कि जब समाज-संगठन स्वयं ही आरम्भक भ्रूतिमें घायक होता है तब उसके बंधन तोड़ लिये आर्य और नवोन नियम बनाये जायें । फिर भी श्रीकृष्ण भरा एक वृत्तिके नहीं थे । लोकसंग्रहका महत्त्व व अच्छी तरह जानते थे । श्रीकृष्णने धर्मका एक नया ही रूप दिया । और किसीसिद्ध श्रीकृष्णके जीवनका हरएक प्रसंग रहस्यमय बना है । कोमी व्याकरणकार जिस तरह एक बड़ा भव्यव्यापी नियम बनानेके बाद उसके अपवादोंको एक सूत्रमें प्रथित करता है उसी तरह श्रीकृष्णने मानो अपने जीवनमें मानवधर्मके सभी अपवाद सूत्रबद्ध किये हैं । गोपियासे अत्यन्त शुद्ध पवित्र किन्तु मर्यादा-रहित प्रेम-रिक्तमें मामा होत हुये भी दुराचारी राजा का बंध भक्तिकी प्रतिज्ञाको सच्चा साबित करनेके लिये अपनी प्रतिज्ञाका भंग करके भी युद्धमें बाण-ग्रहण आदि सब प्रसंगोंमें 'तत्त्वकी रक्षाके लिये नियमभङ्गके दृष्टान्त हैं । श्रीकृष्णने भावजनताको अधिक अन्तर्मुख और अधिक आत्मपरायण बनाया और अपने जीवन और उपदेशसे यह सिद्ध करके दिखाया कि भोग और त्याग-गृहस्थाश्रम और संन्यास प्रवृत्ति और निवृत्ति ज्ञान और कर्म-ब्रह्माव और परलोक आदि सब द्वन्द्वाका विराध कबल आश्रम रूप है । सबमें एक ही तत्त्व अनुस्यूत है । आर्य-जीवनपर सबसे अधिक प्रभाव तो श्रीकृष्णका ही है । फिर भी यह निश्चित करमा मुश्किल है कि जिस प्रभावका स्वरूप क्या है । जिस प्रकार सुरसे मायामें किसी हुई भगवद्गीताके अनेक अर्थ किये गए हैं उसी प्रकार ब्रह्म-जीवनके रहस्यका भी विविध प्रकारसे वर्णन किया गया है । जिस तरह बाल्मीकि-रामायणके श्रीरामचन्द्रजी और तुलसीरामायणके श्रीरामचन्द्रके बीच महान्तर है उसी तरह महाभारतके श्रीकृष्ण, भागवतके श्रीकृष्ण गीत-गोविन्दके

जसंड सेवावे सायक बन जायें तब जितनी मिला दे कि केवल
तेरी सेवाकी ही भुन हमेशा हमपर सवार रहे ! तुझे कोटिश
प्रणाम हैं !

या देवी तर्धमृतेषु मङ्गल्येषु संनिभता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

अवधुबर, १९२४

३

जन्माष्टमीका उत्सव

देसकी राजनीतिक स्थितिके बारेमें अंक वृद्ध साधुके साथ
अंक बार मेरी बातचीत हुयी थी । बातचीतके सिलसिलेमें मैंने
राजनिष्ठाके बारेमें कुछ कहा । साधु महाराज अंकदम धोल
बुढे बजी हिन्दुस्वाममें तो दो ही राजा हुये हैं । मर्यादा
पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र और जगद्-गुरु श्रीकृष्ण । आज भी
जिन दोनोंका ही हम लोगोंपर राज्य चल रहा है । राजनिष्ठा
तो बुन्हीके प्रति हो सकती है । जमीनपर या पैसेपर राज्य
करने-बाँटने चाहे जो हों लेकिन हिन्दुओंके हृदयों पर राज्य
चलानेबाँटने तो य वो ही हैं । मुझे यह बात बिल्कुल सही
मालूम हुयी । मजबूत पूरा करके 'राजा रामचन्द्रकी जय' या
'कृष्णचन्द्रकी जय' पुकारकर लोग जय-जयकार करते हैं । उस
समय जिस तरहकी भक्तिका भुञ्जक दीस पड़ता है उस तरह
की भक्ति दूसरे किसी भी मानव व्यक्तिके प्रति पैदा नहीं
होती ।

श्रीरामचन्द्रजीका जीवन जितना बड़ा है उतना ही सुगम
भी है । रामचन्द्र आर्य पुरुषोंके आदर्श पुरुष—पुरुषोत्तम हैं ।
साम्राज्यके नीति-नियमोंका रस्म-रिवाजोंका, बहु परिपूर्ण पालन
करते हैं । जितना ही नहीं बल्कि रामचन्द्रजी लोकमतको
जितना मान देते हैं कि जो किसी भी प्रजासत्ताक राज्यक
राष्ट्राध्यक्षके लिये आदर्शरूप हो सकता है । रामचन्द्रजीमें यह

निश्चय यह है कि मेरा अक्षेप जीवन समाजके लिये है ।

श्रीकृष्ण भी पुरुषोत्तम हैं लेकिन अरुण युगके । श्रीकृष्णमें यह वृत्ति दिखायी देती है कि जब समाज-संगठन स्वयं ही आत्मिक अन्तर्निर्माणक होता है सब अस्के बंधन तोड़ दिये जाय और नवीन नियम बनाये जाय । फिर भी श्रीकृष्ण अराजक वृत्तिक नहीं थे । लोकमग्नहका महत्त्व व अन्धरी तरह जानते थे । श्रीकृष्णने धर्मको एक नया ही रूप दिया । और इसीलिये श्रीकृष्णके जीवनका हर एक प्रसंग रहस्यमय बना है । कोजी व्याकरणकार जिस तरह एक बड़ा सबंध्यापी नियम बनानेके बाद अस्के अपवादको एक सूत्रमें प्रविष्ट करता है उसी तरह श्रीकृष्णने मानो अपने जीवनमें मानवधर्मके सभी अपवाद सूत्रबद्ध किये हैं । योषियोसि अत्यन्त दुःख पवित्र किन्तु मर्यादा-रहित प्रेम रिस्तेमें मामा होते हुवे भी दुराचारी राजा का बंध, भक्तिकी प्रतिज्ञाको सच्चा साधित करनेके लिये अपनी प्रतिज्ञाका भंग करके भी युद्धमें दारुण-ग्रहण आदि सब प्रसंगों में सत्त्वकी रक्षाके लिये नियमभंगके दृष्टांत है । श्रीकृष्णने आर्यजनताको अधिक अन्तर्मुख और अधिक आत्मपरायण बनाया और अपने जीवन और उपदेशसे यह सिद्ध करके दिखाया कि भोग और त्याग गृहस्थाश्रम और संन्यास प्रवृत्ति और निवृत्ति ज्ञान और कर्म अहिंसा और परलोका आदि सब द्वन्द्वोंका विरोध कवस आश्रम रूप है । सबमें एक ही तत्त्व अनुस्यूत है । आर्य-जीवनपर सबसे अधिक प्रभाव तो श्रीकृष्णका ही है । फिर भी यह निश्चित करना मुश्किल है कि जिस प्रभावका स्वरूप क्या है । जिस प्रकार सुरस भाषामें लिखी हुई भगवद्गीताका अनेक अर्थ किये गये हैं उसी प्रकार ब्रह्म-जीवनके रहस्यका भी विविध प्रकारसे वर्णन किया गया है । जिस तरह बाल्मीकि-रामायणक श्रीरामचन्द्रजी और तुलसीरामायणक श्रीरामचन्द्रके बीच महाम्तर है, उसी तरह महामातरके श्रीकृष्ण मानवतक श्रीकृष्ण गीत-गोविन्दके

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके श्रीकृष्ण और तुकाराम महाराजके श्रीकृष्ण एक होते हुये भी भिन्न हैं। वर्तमानकालमें भी नवीन चन्द्र सेनके श्रीकृष्ण 'वायू' बकिमचन्द्रके श्रीकृष्णसे अलग हैं। गांधीजीके श्रीकृष्ण तिलकजीके श्रीकृष्णसे भिन्न हैं और भरविन्द दासके श्रीकृष्ण तो सबसे न्यारे हैं। सुलभ और दुर्लभ अके और अनेक रसिक और विरागी विष्णुजी और लोकसंग्राहक प्रमल और निष्ठुर, मायावी और सरल—ऐसे अनेक प्रकारके श्रीकृष्णकी जयन्ती किस तरह मनायी जाय यह निर्दिष्ट करना महा कठिन काम है।

श्रीकृष्णका चरित्र अतना ही व्यापक है जितना कि कोई संपूर्ण जीवन हुआ करता है। दुनियाकी प्रत्येक स्थितिका श्रीकृष्णने अनुभव किया है। हर एक स्थितिके लिये अन्होंने आदर्श उपस्थित किया है। श्रीकृष्णकी वास्तवस्था अतिशय रम्य है। गायों और बच्चों पर अउनका प्रेम बनमाछाओंके प्रति अउनकी रुचि भुग्गो का मोह बालमिश्रोंसे अउनका स्नेह मत्स्यविद्याकी ओर अउनका अनुराग सभी कुछ अद्भुत और अनुकरणीय है। छोटे लड़के अकर भिन बाताका अनुकरण कर। सुदामाके स्नेहको याद करके जन्माष्टमीके दिन हम अपने दूर रहनेवाले मित्रोंको चार दिन तक साथ रहनेके लिये श्रीकृष्णका गुणगान करके खेलेके लिये बुला लें तो बहुत ही अुचित होमा।

श्रीकृष्णके मनमें छोटा या बड़ा अमीर या गरीब आनी या अज्ञानी सुदृढ़ या कुसृढ़ किसी भी प्रकारका भेद न था। गौओंको चराने जात समय श्रीकृष्ण अपने सभी साधियोंसे कहत कि हर एक बालक घरसे अपना-अपना कण्वा ले आवे। फिर वे सबवा बलेवा एक साथ मिलाकर प्रेमम सदके साथ बन मोजन करत थे। आज भी हम अेन स्कूलके विद्यार्थी अक पक्षरके कमचारी अेक मित्तक मजदूर अेन बसपमें लेसन बाट सदस्य अिबट्टा हाकर अपने-अपने घरसे आनेका सामान

एकर घाहर या गाँवक बाहर किसी कुर्छेपर या नदीके किनारे पेड़के नीचे गपघप करते गाते खेलते या मजन करते हुआ दिन बितायें तो अस्म में कंसी नज़ी-नज़ी खूबियाँ प्रकट होंगी । लेकिन जिस वन भोजनमें लहड़-पकोड़ी या बिबड़ा-बचना नहीं चलेगा । वज्रपाष्टमीक दिन मुख्य आहार तो गोरसका ही होना चाहिये । दूध, दही मक्खन और वन्द-मूल-फलका आहार ही जिस दिनके लिये अधिकृत है । धर्म-मूर्तार्थक अगवगुस्का जिस दिन अस्म हुआ अस्म दिन तो लहड़के जिस प्रकारका सात्त्विक आहार ही करें । बड़ी अन्नके खोग अपवाम रक्खें ।

अपवासकी पुरानी प्रथा नहीं छोड़नी चाहिये । अस्ममें काफ़ी गहरा रहस्य है । अपवाससे मन अन्तमुख हो जाता है । दृष्टि निर्मल होती है । शरीर हल्का रहता है । बहुतोंका यह अनुभव है कि समय-समय पर अपवास करनेकी आदत हो तो अपवासके दिन मन अधिक प्रसन्न रहता है । अपवाससे वासना धुँध होती है संकल्प-शक्ति धकती है । शरीरमें दोष न हो तो अपवास करनेमें चित्त अक्रान्त होता है और धर्मके गहरे-मे-गहरे तत्त्व स्पष्ट होते जाते हैं । अगर बुद्धियोग हा तो अपवास करके धर्मतत्त्वका चित्तन किया जाय और जिसमें अतितनी शक्ति न हो वह थड़ावान लोगोंके साथ धर्मचर्चा करे । यह भी न हो सके तो गीताका पारायण (पाठ) किया जाय नामसंकीर्तन भजन आदि किया जाय सात्त्विक संगीत के साथ भजन गाये जायें । अपवासके दिन राजमरके व्यावहारिक काम अहीतक हा मक कम किय जाय लेकिन एतली समय आलस निद्रा या व्यसनभ न बिताया जाय । बहुत बार हमें सुन्दर-सुन्दर धार्मिक वचन भजन या पं मिल जाते हैं लेकिन अग्रे लिय गगनेके लिय समय नहीं मिलता ! जिस दिन अन्नको लियनेमें समय बिताया जाय तो अच्छा हागा ।

जिनमें मार्कान्तिक कार्य करनेकी शक्ति हा अन्नके लिये जिससे अच्छा और कबा हो सकता है बि न गोपालके जमी-

स्मयके दिनसे गोरखाका आन्दोलन शुरू करें। श्रीकृष्णके साथियोंको जितना दूध और घी मिलता था, उतना दूध और घी जबतक हमारे बच्चोंको नहीं मिलता तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि हमने श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव ठीक-ठीक मनाया है। श्रीकृष्ण अग्रिम मस्त थे, गृहस्थाश्रममें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। वे दीर्घायु थे। जिससमये हरअेक अखाड़ेमें जन्मोत्सव मनाया जाना चाहिये और श्रीकृष्णके जीवनके मिस भूले हुये अंगकी याद फिरसे ताजा करनी चाहिये।

जो पांडित्यमें ही जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, उनके लिये सबसे अच्छा काम यह हो सकता है कि जिस तरह गीता में श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश दिया है, उसी तरह, मुनके भिन्न भिन्न अवसरपर कहे हुये तमाम बचन महाभारत तथा भागवत् विष्णुपुराण और हरिवंशमेंसे जितने मिल सकें, उतने सब संग्रहीत करें। और उसके साथ जिन बचनोंका संदर्भ देखकर, श्रीकृष्णचरित्रके अनुसार गोसाजीका अर्थ लगायें। और जिस महान् जगद्गुरुका तरबानान (फिलॉसफी ऑफ लाइफ) क्या था, उसकी राजनीति कैसी थी, आदि बातें निश्चित करके लोगोंके सामने रखें।

×

×

×

यह बहुत नाजुक सवाल है कि अमावसीका दिन स्त्रियाँ किस तरह मनायें। भक्तिके अतिरिक्त स्वस्वपना नारदने अपने भक्तिसूत्रमें वर्णन किया है। उसपरस मनोवर्तियोंको गोपी समझकर परब्रह्म पुदपपर व कितनी मुग्ध थीं, जिसका बजन कभी कवियोंने जितना ज्यादा किया है, कि श्रीकृष्णके जीवनके परिपूर्ण रहस्यको जनता लगभग भूझ ही गयी है। श्रीकृष्णको गोपीजनबल्लभ कहा गया है। श्रीकृष्ण और गोपियोंके बीचका प्रेम कितना विदुष्ट और व्यापारिक बन गया था, जिसकी वज्रपमा जिन हृदयोंको नहीं था, सबी खुन्होंने या तो श्रीकृष्णको नीचे घसीट लिया है, अथवा भुम प्रेमका वर्णन करनेवाले

कवियोंने मुनको हलकी बतिका और असत्यवाणी ठहराया है । मेरा कहना यह नहीं है कि कण्ठ और गोपियोंके बीचके प्रेमका वर्णन करनेमें कवियोंने भूल नहीं की है । मैं तो यही मानता हूँ कि समाजकी स्थितिको देखकर कवियोंके सिमें अधिक सावधानीके साथ भूल प्रेमका वर्णन करना अधिक था । भूलसम्मानकी घमके सुफी सम्प्रदायके मन्त कवियों और फकीरोंकी सजा देते समय बहुत मुमकमान बान्ग्लाह कहते थे कि य साधु जो कहते हैं वह शक्त नहीं है लेकिन अनधिकारी समाजके सामने जिस तरहकी रहस्यमय बातें रखकर ये समाजका नुकसान पहुँचाते हैं और जिसलिये ये सजाके पात्र हैं । चूँकि गोपियोंके प्रेमको हम नहीं समझ सकते जिसलिये भूल प्रेमका ऐसा स्वल्प देनेकी कामी आवश्यकता नहीं जो हमारी वर्तमान नीति-कल्पना-आलो पसन्द आये । मीराबायीने स्पष्ट ही दिखाया है कि गोपियोंका प्रेम कैसा था । जब-जब लोगोंके मनस धर्मके मुपरबने पड़ा मुठ जाती है तब-तब भूल पड़ाको फिरसे स्थिर करने-क लिये मुक्त पुरुष जिस मसारेमें अबतार लेता है और स्वयं अपने अनुभवमें और जीवनसे लोगोंमें धर्मके प्रति पड़ा पैदा करता है । मुझे तरह गोपियोंकी दृष्ट भक्तिसे बारेमें जब भागमें अच्छड़ा मृगन्न हुआ तब गोपियोंमेंसे अकने—मायद रापायी ही होगी—मीराका अबतार केकर प्रेमधर्मकी फिर से सम्पापना की । यदि हम खोदकर और भक्तके बीचका यह अनिवर्जनीय प्रेम-मन्त्रस्थ स्पष्ट कर दें तब तो गोपियोंके प्रेम और बिरहके गीत गानेमें भूल कोही आरति नहीं दिगाओ दनी । मीराके आन्त्रिका रयाग हममें हो ही नहीं सकता । जमाना बुरा आ गया है जिसलिये क्या हम मीराबायीको भूल जायें ? यह बात नहीं है कि श्रीकण्ठके साथ केवल गोपियोंका सम्बन्ध था । यगोदाजी बायकण्ठकी पूजनी, कुन्ती पायमायीका पूजनी मुमना और डोपरी कृष्णकी ब-पुष्पमें पूजती । श्रीकण्ठका यह सम्पूर्ण जीवन हूँ अपनी स्त्रियोंके

सामने रखना चाहिये । श्रीकण्ठ कितने संयमी थे कितने नीतिज्ञ थे कितने धर्मनिष्ठ थे आदि सभी बातें स्त्रियोंके सामने स्पष्ट कर देनी चाहियें । और सभी गोपी प्रेमका आदर्श व्युत्पन्नके सामने रखना चाहियें । प्रेम और मोहक बीच जो स्वर्ग और नरकके अंतरा भेद है उसे स्पष्ट करके दिखाना चाहिये । पुराणोंमें—भागवतमें—एक बहुत सुन्दर प्रसंगका वर्णन आया है कि रासभीषामें गोपियोंके मनमें मलिन कल्पना आते ही श्रीकण्ठ—असंख्य व्यपारी श्रीकण्ठ—अचानक अदृश्य हो गये और जब गोपियोंका मन परचासापसे पवित्र हुआ तभी वे फिरसे प्रकट हुये । प्रेमका रहस्य हरएकको समझ लेना चाहिये । जिस रहस्यको किसी भी व्यक्तिसे छिपा रखनेमें कुशल नहीं । अधूरे ज्ञानसे व्युत्पन्न होनेवाले दोषोंका हटानेका अुपाय सम्पूर्ण ज्ञान है अज्ञान नहीं । प्रेमको उसके विषुद्ध रास्तेसे हमें ले जाना चाहिये । प्रेम स्वानेसे नहीं बढता बल्कि स्वानेके प्रयत्नमें वह विकसित हो जाता है ।

जन्माष्टमीके दिन हम सुगमा चरित्र गायें श्रीकण्ठ द्वारा गोपियोंको दिया हुआ उपदेश गायें बुद्धके हाथ श्रीकण्ठजी का गोपियोंको भेजा हुआ मन्त्रेष्टा गायें गीताका रहस्य समझ लें । रास खेलें और अुपवास रखकर शुद्ध वृत्तिस अुत्तक अन्दरका रहस्य समझ लें ।

जन्माष्टमीके दिन अगर हम गायत्री पूजा करें, तो वह ठीक ही है । गायत्री पूजा करनेमें हम पदोंको परमेश्वर नहीं मानते किन्तु अुम पूजा द्वारा गायत्री प्रति प्रेम और कृतज्ञता व्यक्त करते हैं । नदीकी पूजा तुलसीकी पूजा और गायत्री पूजा अगर अच्छी तरह साथ-समझकर करें, तो अुमस अुत्तकरणको अच्छी स-अच्छी शिक्षा मिलेगी । हम वृत्तिका विकास होगा और हृदय पवित्र तथा संस्कारी बनगा । प्रत्येक पूजामें एक-या ही भाव नहीं रहना । पूजा कृतज्ञतासे ही सकती है बफ़्तवारी के कारण हो सकती है प्रेम के कारण हो सकती है आदरभूति

से हो सकती है भक्तिसे हा सकती है आत्मनिवेदन-भूतिसे हो सकती है या स्वल्पानुसंधानके कारण भी हो सकती है । जिस तरह देसा जाय तो गायकी पूजा करनेमें अकेलवरवादी या अमीलवरवादीको भी काभी आपत्ति नहीं होनी चाहिये । निरीलवरवादी ऑगस्टस-बाण्ट क्या मानवजातिकी स्त्री प्रतिमा बनाकर भूषकी पूजा नहीं करता था ?

भाव्य महीनेमें बहुत-सी गायें ब्याती हैं । घरकी छोटी छोटी लड़कियाँ अगर कृतज्ञताके भाव गायोंकी और अथर अथर लछलछने-कूदने व करनेवाले छोटे-छोटे बछड़ोंकी हल्दा और रोलीसे पूजा करें, तो किस्ती प्रम-भूति आपत्त होगी !

कन्याशालाओंमें अनेक तरहसे कृष्ण-जयन्ती मनायी जा सकेगी । घरके अन्दरकी अमीन अच्छी तरह सीपकर सफ़द पत्थरकी बुकनीसे और अमीर आविस चौब-पूरनेकी प्रतियोगिता रखी जा सकेगी । लड़कियाँ गीत गायें राम लाल कृष्ण-जीवन के भिन्न भिन्न प्रसंगोंका पद्य और गद्यमें वर्णन करें, घरसे कलेघा लाकर सब मिलाकर लायें । अम दिन स्कूलकी लड़कियोंका अपनी सहेलियोंको भी साथ लातेकी जिजाबत हो ता अधिक आनन्द आयगा और अधिक लड़कियाँ शिक्षाकी ओर आकर्षित होंगी । धार्मिक शिक्षाका यदि प्रभावकारी बनाना है तो हर त्योहारके अवसरपर स्कूलको मन्दिरका स्वल्प द देना चाहिये । यदि हम भूति-पूजासे न डर गये हा ता जन्माष्टमीके दिन स्कूलमें हिंदोला बंधवाकर लीगियाँ गायें । जिसमें लड़कियाँकी माताओं भी अवश्य भाग लेंगी ।

भाजकी कन्याशालाओं अभीतक समाजका अब भग नहीं वनी है अन्होंने समाजमें अभी तक जड नहीं पकड़ी है और जिमीसिये अिन स्कूलोंको चलानेवाल अत्साही दशमबर्काका आपस ज्यादा परिध्यम बवार जाता है । जन्माष्टमी जस त्याहार मनानेमें यदि समाजकी सभी स्त्रियाँ भाग लेने लग जायं, ता वेगल-वेगलें जिहा सफ़द हा जायगी जिहाका लाभ वेक स्कूल

में पढ़नेवासी लड़कियोंको ही नहीं बल्कि सारे समाजको मिलेगा और हम शिक्षाका जो पवित्र कार्य कर रहे हैं उसपर भी श्रीकृष्ण परमात्माकी अमृत-दृष्टि धरसेगी ।

१०-४-२३

४

नवरात्रि

महिषासुर साम्राज्यवादी था । सूर्य चिन्द्र अग्नि वायु चन्द्र यम वरुण आदि सभी देवताओंके अधिकार और महकमे वह स्वयं ही चलाता था । स्वर्गके देवोंको उसने भूलोककी प्रजा बना दिया था । किसीको भी अपने स्वामपर सुरक्षितताका अनुभव नहीं होता था । इस परमात्माके पास गये । परमात्माने मूर्ष्टिकी जो व्यवस्था कर रखी थी उसे महिषासुरने कितना बिगाड़ डाला है जिस बारेमें अन्होंने भगवान्‌को सब-कुछ कह सुनाया । सब हाल सुनकर विष्णु राधा शंकर आदि सब देवोंके गरीरोंसे पुष्पप्रकाप जाग अठा और उससे अंक दैवी शक्ति-मूर्ति उत्पन्न हुई । सब देवनि जिस सर्वदेवमयी शक्तिको अपने-अपने आयुधोंकी शक्तिसे मंडित किया और फिर जिस दैवी शक्ति और महिषासुरकी आसुरी शक्तिमें भीषण युद्ध टन गया । कौन कह सकता है कि वह युद्ध कितने सप्ताहों तक चला ? लेकिन जैसा माना जाता है कि कुम्हारमहीनेकी दुकान प्रतिपदासे लेकर दशमीतक यह युद्ध चलता रहा और उसके अनुसार दैवी शक्तिकी विजयका नवरात्रि-अुत्सव हम मानते हैं ।

दैवी शक्ति परमा विद्या है ब्रह्मविद्या है आत्मतत्त्व विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका मुख्य रूप है । यह शक्ति 'घटं प्रति शुभकरी' है अहितेषु साध्वी' है दुष्टमनके साथ भी यह दया प्रकट करती है । दुष्ट लोगोंके बुरे स्वभावको दान्त करना ही जिस दैवी शक्तिका शील है । 'दुर्बुत्तबुत्तोसमर्तं तव देवि शीलम् ।'

असुर लोग जिस शक्तिको न समझ सके। भक्त साग जब देवी शक्तिकी ध्वज बोझने लगे तो असुर परेशान होकर चित्ता झुठे 'अरे यह क्या? अरे यह क्या!' आसिर असुरोंका राजा स्वयं ही लड़ने लगा। उसने अनेक तरहकी नीतियाँ आजमाकर देखीं अनेक रूप धारण किये लेकिन अन्तमें निःशय-देवगण शक्ति समूहमूर्ति की ही विजय हुई। बायुधनुकुल बहने लगी ययनि भूमिकी सुखसा-सुफला कर दिया दिशार्थ प्रसन्न हुई और भक्तगण देवोंका मगल गाने लगे। देवीने भक्तोंको आश्वासन दिया कि इसी तरह फिर जब-जब आसुरी लोगोंके कारण आतंक फैल जायगा तब-तब मैं स्वयं अवतार धारण करके दुष्टताका नाश करूँगी।

यह महिमासुर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें अपना साम्राज्य प्रस्थापित करनेकी भरसक कोशिश करता है और अन्त-अन्त समय उसके सब स्वस्वोंको पहचानकर अन्तका समूह नाश करनेका कार्य देवी शक्तिको करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्त-करणकी जाँच-परख करनेपर यह ज्ञान सज्जा है कि उसके हृदयमें यह युद्ध कितने सालों तक चलता रहा है। नवरात्रिके दिनोंमें अपने हृदयमें दीपको अक्षरबलपुत्र प्रज्ज्वलित रखकर हमें देवी शक्तिकी आराधना करनी चाहिये क्योंकि जब यह देवी शक्ति प्रसन्न होती है तो वही हमें मोक्ष प्रदान करती है।

सदा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।

१०८ '२२

५

विजयशायी

आयरेमें मुगलकालकी जो अमारतें हैं उनमें सेक विग पता यह है कि इनके निचले लड्ढास पत्थरके हैं और ऊपर वाले सफेद पत्थरके। लाल पत्थरका काम जहाँगीरके समयका

है और सफेद पत्थरका बाह्यहृदयके समयका । हर ज़िमास्तमें जिस तरहका कार्यक्रमका इतिहास वर्णभेदसे मूर्तिमान दिखाई देता है । किसीभी पुराने बड़े शहरमें पुरानी बस्ती और नयी बस्ती नेक दूसरेसे मटी हुयी नज़र आती है या बस्तियोंकी तहों-पर-तहें जमी हुयी दिखायी देती हैं । भाषाकी कहावतोंमें भी भिन्न-भिन्न समयका इतिहास समाया हुआ होता है । हम घरमें जमीनपर फर्श बनानेके लिये जो पत्थर बिछाते हैं वे जैसे मालूम पड़ते हैं गोया वह समूचा ज़ेक ही पत्थर हो मगर ज़ूममें भी प्रत्येक स्तरमें कभी बरसोका मंतर होता है । नदीके किनार हर साल जो कीचड़की तहों-पर-तहें जम जाती हैं अन्तमें अन्हीसे परतीकी मट्टीमें ज़ेक पत्थर बन जाता है ।

दशहरेका त्योहारभी ज़ेक ही त्योहार होते हुये भिन्न कालके भिन्न भिन्न स्तरोंका बना हुआ है । दशहरेके त्योहारके साथ असंख्य युगोंके असंख्य प्रकारके आर्य पुरुषार्थोंकी विजय जुड़ी हुयी है ।

मनुष्य-मनुष्यका संघर्ष जितना महत्वका है उतना ही या अमर भी अधिक महत्वका संघर्ष मनुष्य और प्रकृतिके बीचका है । मानवको प्रकृतिपर जो सबसे बड़ी विजय मिली है वह है खेती । जिस दिन खेती हुयी जमीनमें नौ प्रकारका अनाज बोकर कृषिमें जलका सिंचन करके अंसमेंसे अपनी आजी-विका तथा भविष्यके सशहके लिये पर्याप्त अनाज मनुष्य प्राप्त कर सका वह दिन मनुष्यके लिये सबसे बड़ी विजयका या कर्पोरि अंसके बाद ही स्थिरतामूलक संस्कृतिका जन्म हुआ । अंस दिनकी स्मृतिजो हमेशा ताज़ा रखना कृषि परामर्श आर्य लोगोंका प्रथम कर्तव्य था ।

बीसवीं सदी भौतिक तथा यांत्रिक आविष्कारोंकी खदी समझी जाती है, और वह अप्रति भी है लेकिन मानवजातिके अस्तित्व और संस्कृतिके लिये जो महान् आविष्कार कारणरूप

हुमे हैं वे सब आद्ययुगमें ही हुए हैं। जमीनकी जोतनेकी कसा सूत कातनेकी कसा आग जलानेकी कसा और मिट्टीस पक्का पक्का बनाने की कसा—ये चार कसामें मानो मानवी संस्कृति का आधारस्तम्भ हैं। जिन चारों कलाओंका अुपयोग करके विजयलक्ष्मीक दिन हमने पूषिमहोत्सवका निर्माण किया है।

अपने बचपनमें देखे हुमे पहलू मकराभिक अुत्सवकी याद मुझे आज भी बनी हुई है। मेरे माअी प्रतिपदाक दिन राहुरके बाहर जाकर सेतासे अच्छी-से-अच्छी साफ काली मिट्टी ले आये। मैं स्वयं भी अनाजाकी फहरिस्त बनाकर अुनमेंसे जो बनाऊ हमारे घरमें न मिले अुन्हे अपने नानाके पहासे ले आया। मेरी दादीने छोटी-सी धुनबीसे रस्मी धुनकर अुसकी २६ अंगुल लम्बी बत्ती बनायी। मेरी मांने सूत कातकर (चरसपर नहीं घत्कि लोट पर) अुस सूतकी अेक हजार छोटी-छोटी बत्तियाँ बनायीं। मैं बाजारमें नारियल तथा पचरत्न ल आया। पचरत्नमें सोना मोती हीरा प्रवाल और मोरम या माणिक थे। जिन पचरत्नोंके दुबड़ बहुत ही छोट थे। मेरी भतीजी बगीचेसे फूल और तरह-तरहके पत्ते लायी। पिताजीने स्नान करके स्वयं हमें गायके गोबरस ल्पि दी हुई भूमिपर अुस काली मिट्टीको फैलाकर अुससे अेक सुन्दर चौक बनाया। यह हुआ हमारा पत। अुसके बीचोंबीच अक साटा रत्न दिया। अुस लोठमें पानी भरा हुआ था। अुसके दक्कर अेक सावुत सुपारी दक्षिणा पंचरत्न आदि चीजें डाली गयी थीं। अुपर आमक पड़की अेक पाँच पत्तोंवाली छोटीसी टहनी रणवर धुमपर अेक नारियल रखा था। सुन्दर बाजारके साटेमेंसे बाहर निकल हुआ आमके हुने-हर पाँच पत्त और अुनपर गिगरक समान दिशाभी दमेवाले नारियलका आकार देतपर हम बहद खुश हुमे। पूजाकी तैयारी हुमी चौकार पतमें भी बनाऊ आये गय। अुनपर पानी छिड़का गया। बीचमें रंगे हुआ घट (पाटे) का चन्दन बेतर और कुंकुमसे

पूजा की गयी। यथाविधि सांग पोडयोपचार पूजा हुयी। २६ अंगुल लम्बी बत्तीवाला दीपक जलाया गया। फिर जारती हुयी और घरमें सब कहने लगे कि आज हमारे यहाँ नवरात्रिकी घटस्थापना हुयी है। अुस नवादीपको नौ दिन तक बलंड बसता रखना था। अुसका बीचमें बुझ जाना महा अशुभ माना जाता था। दूसरे दिन पूजामें अेकके बदल दो मासाअें झटकायी गयी, तीसरे दिन तीन चोब दिन चार—अिस तरह मासाअें बढ़ती गयीं। अुपर मासाअें बढ़ी और नीचेके खतमें अकुर फूट निकल। कयी अकुर ता अपने दलोंके छाते बनाकर ही बाहर निकल आयेथ। हमें हर रोज मिष्टान्न मिसता था सक्रिन पिता भी तो सिर्फ अक ही समय भोजन करते और सारा दिन पीताम्बर पहनकर अुस नम्नादीपकी देखभाल करते। बसो न टूटे तेल कम न पड़े और पीया बुझने न पाय—अिस बातकी बढ़ी फ्रिक रक्खनी पड़ती थी। रातको भी दो चार बार बुठकर तेल डालना अुपर जमी हुयी कालिसकरो बढ़ी सावधानीसे झटकना आदि काम अुनको करने पड़त थे।

अब मौ अनाजाके अकुर पूरी तरह फूट निकले तो अुम समयकी अेतकी घोमा बहुत अवरुणनीय थी। कुछ अनाज जल्दी अुधे कुछ देरीसे। मैं यह अण्छी तरह याद रखता कि कौनसे अनाज पहले अुगे हैं और कौनसे बादमें। सभी अकुर बिसकुल सफेद थ बयोकि नवरात्रिका यह 'खत' घरके अन्दर वा और सूर्यके प्रकाशके बिना हुरा रंग तो आ नहीं सकता। फिर पिताजी खतपर हस्तीका पानी छिड़कने लगे। मैंने पूछा—“यह किसलिये? अबाब मिला—“अिसलिय कि अुया हुआ अनाज सोनेके समान दिलाई दे।

सातवें दिन सरस्वतीका आह्वान हुआ। घरमें जितनी घामिक और सस्कृतकी जिनाअें और पोथियाँ थीं अुन सबको अेक रंगीन पटपर रखकर हमने अुनकी पूजा की। हमें पढ़ानी से छुट्टी मिला गयी। अिस अनध्याय कहते हैं। सरस्वतीका

धाहान पूजन हुआ। 'बह' पूजन यानी दास्त्रास्त्राका पूजन। जिस दिन हाथी घोड़ों जैसे मुटोपयागी जानवरोंकी भी पूजा की जाती है। जिस तरह मकरानि पूरी हुमी और दसवें दिन दशहरा आया। दशहरेके दिन होम बलिदान और सोमोत्सवम ये तीन प्रमुख विधियाँ थीं। वह विचारमका भी दिन था।

विजयादशमीक त्योहारमें आतुर्वर्ष्य अंकन हुआ दीसता है। ब्राह्मणोंके सरस्वती पूजन तथा विद्यार्थ्य क्षत्रियोंक दास्त्र पूजन अस्त्रपूजन तथा सोमोत्सवम और वैश्याकी खती य सीना बातेँ मिस त्योहारमें अंकनित होती हैं। और जहाँ अतना बड़ी प्रवृत्ति चसती हो वहाँ सुदोंकी परिचर्या का समाविष्ट है ही। जब दहाती लोग मकरानिके अनाजकी साने-जैसी पीली पीली कोंपलें तोडकर अपनी पगडियोंमें झोंसते हैं और बड़िया पोशाक पहनकर गाते-बजाते सोमात्सवम करने जाते हैं तब ऐसा दृश्य आँसोंके सामने आ सडा होता है मानो सारे दशका पीर्य अपना पराक्रम दिसलामेके लिये बाहर निकल पडा हो।

दशहरेका अुत्सव जिस तरह कृषिप्रधान है उसी तरह वह क्षत्रमहारसव भी है। जिन दिनों भादवे सिपाहियोंका मुगोंकी तरह लड़ानेका तरीका प्रचलित नहीं था अुन दाना क्षत्र सेज तथा राजतज किसानोंमें ही परवरित पात था। किसान यानी क्षेत्रपति-क्षत्रिय। जो सालभर भूमि माताकी सेवा करता हा वही मौका आनेपर अुसकी रक्षाके लिये निकल पडेगा। नदिया नासों टकरियों और पहाड़ोंके साथ जिसका रात-दिनका सम्बन्ध रहता है, छोडा, बल-जम जानवराका जो अनुशासन सिखा सकता है और सार समाजका जो ध्याना विम्बना है अुसमें सेनापति और राजस्यके सब गुण आ जायँ ता आन्वय को क्या बात है? राजा हो बिम्बा है और किमान हो राजा है।

यैसी हासतमें कृषिका त्योहार दास-त्योहार बन गया। जिसमें पूरी तरह ऐतिहासिक जीविरह है। क्षत्रियोंका प्रभ

कर्तव्य तो स्वदेश-रक्षा ही है। परन्तु बहुत बार, शत्रुके स्वदेश-में घुसकर देशको बरबाद करनेसे पहले ही शत्रुके दुष्ट हेतुको पहचानकर स्वयं—सीमोस्लंघन करना—अपनी सीमा यानी सरहदको छाँधना और शत्रु शत्रुके मुत्कर्में रुड़ाजी से जाना होशियारीकी और वीरोचित भाव मानी जाती है।

थोडा-सा सोचनेपर मालूम होगा कि जिस सीमोस्लंघनके पीछे साम्राज्यवृत्ति है। अपनी सरहद छाँधकर दूसरे देशपर अधिकार जमाना और वहाँसे धन-धान्य सूँठ लेना जिसमें आरम रक्षाकी अपेक्षा महत्वाकांक्षाका ही अंश अधिक है। जिस तरह झटकर लाया हुआ सोना अगर पराक्रमी पुरुष अपने ही पास रखे तो वर्तमान युगके लक्ष्यप्रकोप (Militarism) के साथ बिद्यप्रकोप (Industrialism) के मिला जानेकी मया तक स्थिति पैदा होगी।^१ वहाँ प्रभुत्व और घनिकत्व अकेल

^१ 'सम्राज्यकोप' तथा 'बिद्यप्रकोप' मिल दो नये शक्तियों की सार्थकता जुड़े दिख करनी चाहिये। चातुर्वर्ष्यका समुच्चय या सार्वजन्य तो समाज-धरीरकी स्वाभाविक स्थिति है। समाजके लिये जिस चारों बलोंकी आवश्यकताको स्वीकार कर लिया गया है। जिस तरह जब व्यक्तिके धरीरमें वात पित्त और कफ ये तीन घातु भुजित अनुपातमें रहते हैं तभी धरीर नो-रोगी रहता है। उसी तरह समाज-धरीरमें चातुर्वर्ष्य भुजित अनुपातमें होना चाहिये। धरीरमें पित्तकी मात्रा बढ़ जाती है, तो भुजित पित्तप्रकोप कहते हैं। निरुप्रकोपी सारा धरीर खराब हो जाता है। यही हासत वातप्रकोप और कफप्रकोपके विषयमें है। समाज-धरीरमें साम-वर्ष्यका प्रतिरूप या प्रावश्य हो जाय तो उस स्थितिको सम्राज्यकोप कहना ही भुजित है। यही वात बिद्यप्रकोप या वैद्यप्रकोपकी भी है। धरीरका नाश होनेका समय आनेपर तीनों घातुर्षीका प्रकोप हो जाता है। मिले विरोध कहते हैं। युरोपमें मात्र शक्ति वैश्य और धृष्ट जिस तीनों बलोंका एक साथ प्रकोप हुआ है, अंता साम्राज्य-साम्राज्य नष्ट हो रहा है और बहुत-बहुत ब्राह्मण जिस तीनों बलोंके टिककर बन गये हैं।

मा बात हैं वहाँ घातानको असम न्योता देनेकी जरूरत नहीं रहती । असीलिये दशहरेके दिन लूटकर लाये हुये सानेको सब रिस्तदारोंमें बितरित करना उस दिनकी एक महत्वकी धार्मिक विधि तय की गयी है ।

सुवर्ण-वितरणकी मिस प्रथाका संबंध रघुवधके राजा रघुके साथ जोड़ा गया है ।

रघुराजाने विद्वज्जित् यज्ञ किया । समुद्रबलयांकित पृथ्वी को जीतनेके बाद सर्वस्वका दान कर डालना विद्वज्जित् यज्ञ कहलाता है । जब रघुराजाने मिस तरहका विद्वज्जित् यज्ञ पूरा किया तब मुसके पास बरतन्तु ऋषिका विद्वान् और तेजस्वी शिष्य कौत्स जा पहुँचा । कौत्सने गुदमे चौदहों विद्याओं ग्रहण की थीं उसको दक्षिणाके सौरपर चौदह करोड़ सुवर्ण मुद्राओं गुल्फको प्रदान करनेकी उसकी विच्छा थी । लेकिन सर्वस्वका दान करनेके बाद वचे हुए मिट्टीके बर्तनोंसे ही राजाको आदरा तिष्य करत दस कौत्सने राजासे कुछ भी न माँगनेका निश्चय किया । राजाका आशीर्वाद देकर वह जाने लगा । रघुने दड़े भाग्रह्न साथ उस रोक ग्त्रा और दूसरे दिन स्वर्गपर पावा बोलकर मिन्द्र और कुबेरके पाससे धन सानेका प्रवन्ध किया । रघुराजा चक्रवर्ती था । अतः मिन्द्र और कुबेर भी मुसके माण्डलिक थे । ब्राह्मणका दान देनेक लिये धनसे कर सेनेमें संकोष किस बातका था ? रघुराजाकी चढ़ाओकी बात सुनकर बबता राग डर गय । मुन्होंने धार्मिक भेष देकर सुवर्ण-मुद्राओंकी बृष्टि की । रघुराजाने मुबह अठकर दया ता जितना चाहिये अतना सुवर्ण आ गया था । अममे कौत्सका बहु डेर द दिया । कौत्स चौदह कराहसे ज्यादा मुद्रा लेता न था और राजा दानमें दिया हुआ धन वापस सेनेका तैयार न था । आगिर मुसने वह धन नगरवासियोंको सटा दिया । वह दिन आश्विन शुक्ला दशमीरा था असीलिये आज भी दशहरेके दिन धार्मिक पूजन करके राग अमके पत गोना समझकर

मिटते हैं और एक-दूसरेका देते हैं। कुछ लोग तो शमी की नीचेकी मिट्टीको भी सुवर्ण समझकर ले जाते हैं।

शमीका पूजन प्राचीन है। वैसे माना जाता है कि शमी के पड़में ऋषियोंका तपस्तेज है। पुराने जमानेमें शमीके स्मृद्धियोंको आपसमें बिसकर राग आग मुलगाते थे। शमीकी स्मिधा आहुतिके काम आती है। पाण्डव जब अज्ञातवास करने गये थे तब भुन्होंने अपने हथियार शमीके एक पेड़पर छिपा रखे थे और वहाँ कोखी जाने न पाये बिसक स्मिधे भुन्होंने उस पेड़के तनेसे एक नर-जंकाल बाँध रक्ता था।

रामचन्द्रजीने रावणपर जो चढ़ाखी की सो भी विजया दशमीके मुहूर्त्तपर। जार्य लोगोंने—हिन्दुओंने बनेक बार विजयादशमीके मुहूर्त्तपर ही चावे बोलकर विजय प्राप्त की है। जिसस विजयादशमी राष्ट्रीय विजयका मुहूर्त्त या त्योहार बन गया है। मराठे और राजपूत जिसी मुहूर्त्तपर स्वराज्यकी सीमाको बढ़ानेके हेतु सन्धु-अंदेसपर आक्रमण करते थे। दम्नास्त्र-से सजवर और हाथी पाड़ोंपर चढ़कर नगरके बाहर बलूत ल आनेका रिवाज आज भी है। वहाँ शमीका और अपराजिता देवीका पूजन सीमोल्लघनका प्रमुख भाग है।

वैसे माना जाता है कि शमी और अर्धमत्तक वृक्षमें भी बानुका नाश करनेका गुण है। मुस्तुरेके पेड़को अर्धमत्तक कहते हैं। वहाँ शमी नहीं मिसती वहाँ मुस्तुरेक पेड़की पूजा होती है। मुस्तुरेके पत्तेका आकार सोनेके सिक्केकी तरह गोण होता है और जुड़े हुअे जवाबी कार्ड (Reply Card) की तरह अुमके

१ महिषासुर नामके एक प्रबल दैत्यने बड़ा अस्तक चलाया था। ब्रह्मदेवाने भी दिन तक भुलते पुड़ करके विजयादशमीके दिन भुलका बंध किया था। जिस आगवकी अक कहानी पुराणोंने मिसती है। प्रितीतिसे अपराजिताका पूजन करने और महिष नामो भतकी बलि चढ़ानेका रिवाज पड़ा है।

पले मुड़े हुअे हाते है जिससे जे ज्यादा खूबमूरत विलायी देते हैं ।

दशहरेके दिन सीमामा लगभग स्वप्न हो जाता है । शिवा जीके किसान-सैनिक दशहरे तक खेतीकी चिन्तासे मुक्त हो जात है । कुछ काम बाकी न रहता था । सिर्फ प्रसन्न काटना ही बाकी रह जाता था । पर धूस सो घरकी औरतें वस्त्र और बड़े शोग कर सकते थे । जिससे समा भिन्न करके स्व राज्यकी सीमाको बढ़ानेके शिखे भवसे मजबूत महर्षि दशहरेका ही था । इसी कारण महाराष्ट्रमें दशहरेका त्योहार बहुतही लोकप्रिय था और आजभी है ।

हम यह वक्त मके हैं कि विजयादशमीक अक त्योहारपर अनेक संस्कारों, अनेक संस्करणों और अनेक विश्वासोंकी तहें बड़ी हुयी हैं । कपि-महात्सव आश्व-महात्सव बन गया सीमोल्लस-घनका परिणाम दिग्विजय तब पहुँचा स्व-संरक्षणके साथ सामाजिक प्रेम और धनका विभाग करनेकी प्रवृत्ति का सम्बन्ध दशहरेके साथ जुड़ा । लेकिन अब ऐतिहासिक चरनाको दशहरे क साथ जोड़ना अभी हम भूल गये हैं जोकि जिस जमानेमें अधिक महत्त्वपूर्ण है । 'विजयजयसे धर्मजय भोरेठ है । बाह्य गजुका बंध करनेकी अपेक्षा हृदयस्य पङ्क्तिपुष्पाको मारनेमें ही महान् पुरुषार्थ है । नवधान्यकी फसल कान्नेकी अनिश्चित पुष्प की फसल काटना अधिक चिरम्भायी होता है । सारे ससार-को भैंसा उपवदा देनेवाले मारजित् साकजित् भगवान् बुद्धका जन्म विजयादशमीके शुभ मुहूर्त्तपर ही हुआ था । विजयादशमा-के दिन बुद्ध भगवान्का जन्म हुआ, और वसन्ती पूर्णिमाके दिन अर्जुन पाण्डित्यदायी आर्यनस्वाना और अष्टांगिक मार्गका बोध हुआ यह बात हम भूल ही गये हैं । विष्णुका चतुर्मान अवतार बुद्ध अवतार ही हैं । अमर्त्य विजयादशमी का त्योहार हमें भगवान् बुद्ध का मार्ग-विजयका स्मरण करके ही ममाना चाहिये ।

६

बीवासी

-१-

बलि राजाने दानका वत लिया था । जो याचक जो वस्तु माँगता राजा उसे वह वस्तु देता । बलिके राज्यमें जीव हिंसा मद्यपान अगम्यागमन चोरी और विश्वासघात—अन पाँच महापापोंका कहीं नामतक न था । सर्वत्र दया दान और अस्त्रबका बोलबाला रहता था । अन्तमें बलिराजाने बामन मूर्ति श्रीविष्णुको अपना सर्वस्व अर्पण किया । बलिकी जिस दानवीरताके स्मारकके रूपमें श्रीविष्णुने बलिके नामसे तीन दिन रातका त्योहार निश्चित किया । यहो हमारी बीवासी है । बलिके राज्यमें आलस्य मलिनता रोग और दारिद्र्यका अभाव था । बलिके राज्यमें या लोगोंके हृदयमें अंधकार न था । सभी प्रेम से रहते थे । द्वेष मत्सर या असुयाका कारण ही न था । बलि का राज्य जन साधारणके लिये अितना लोकोपकारी था कि अस्त्रके कारण प्रत्यक्ष श्रीविष्णु अस्त्रके द्वारपास बनकर रहे । अिसी कारण यह निश्चय किया गया कि बलिराजाके स्मारक स्वरूप जिस त्याहारसे पहले साग बूझा-बूझा कीचड़ और गंदगीका नाश करें, जहाँ-जहाँ अंधरा हो वहाँ दोषावलिकी शोभा करें लोगोंके प्राण देनेवासे यमराजका तर्पण करें, पूर्वजाका स्मरण करें मिष्ठान्न भक्षण करें और सुमन्वित धूप-दीप तथा पुष्प-पत्रोंसे मुन्दरता बढ़ावें । अनि दिनों सायं कालभी शोभा अितनी मनाहारी होती है कि यद्य पधर्व किन्नर औपमि पिशाच मय और मणि सभी अस्त्रबका मृत्य करतें हैं । बलि-राज्यका स्मरण करके लोग सरह-सरहने रगोंसे पीर पुरते हैं सफेद चाबस लगाकर भाँति भाँतिके मुन्दर चित्र बनाते हैं माय बीस आदि गृह-पशुओंको सजा-धजाकर अूनका जुलूस निकालते हैं श्रेष्ठ और कनिष्ठ सब मिलकर

यष्टिकाकपणका खेल खेलते हैं। यष्टिकाकपण यूरोपीय लोगोंके रस्सी खींचनेके 'टग ऑफ़ वॉर'—वैसा एक खेल है। जिसीको हमने 'गजप्राह'का नया नाम दिया है। पुराने समयमें 'राजा लोग दीवालीके दिन अपनी राजधानीके सभी सड़कोंको सार्वजनिक रूपसे आसंजन देते थे और गुनसे खेल करते थे।

सुगंधित इष्योंकी मालिश करके नहाना तरह-तरहके दीये जलाने जलाना और मिष्ट-मित्रोंके साथ मिष्ठानतका भोजन करना दीवालीका प्रधान कार्यक्रम है। इसके राज्यमें प्रवेश करना हो तो होय मत्सर, असूया अपमान आदि सब भूलकर सबके साथ अकदिस हो जाना और जिस तरह निष्पाप होकर मये वर्षमें प्रवेश करना हमारा प्राचीन रिवाज है।

: इसी दिन सत्यमामाने श्रीकृष्णकी मददसे नरकासुरका नाश करने सोलह हजार राजबन्धियोंको मुक्त किया था।

दीपावलिके अत्यंतमें स्त्रियोंकी अपेक्षा नहीं की गयी है। स्त्री-पुरुषोंके सब सम्बन्धोंमें भावो-बहनका संबंध शुद्ध सत्त्विक प्रेम और समानताके अस्मासवा होता है। पति-पत्नीका या माता-पुत्रका सम्बन्ध अितना व्यापक और अितना सात्त्विक अस्थासयुक्त नहीं होता।

घन-सेरतसे लेकर भाभी दूज तकके पाँचों दिनोंके साथ यमराजका नाम जुड़ा हुआ है। भला जिसका उद्देश्य क्या होगा ?

मिश्रप्रस्थका राजा हुंस भृगुयाके लिये धूम रहा था। हैम नामक एक छोटेसे राजा ने अंसका आतिथ्य किया। असीदिन हैमके यहाँ पुत्रोत्पन्न था। राजा आनन्दोत्सव मना ही रहा था कि अितनेमें अविश्वस्यतामे आकर कहा कि बिबाहके बाद चौथे ही दिन यह पुत्र सर्प-दंष्ट्रे मर जायगा। हुंस राजाने अंस पुत्रका बचामेका निश्चय किया। अंसने यमुना नदीके रहमें एक सुरक्षित घर बनवाकर हैमराजकी वहाँ आकर रहनेका

६

बीवाली

--१--

बलि राजा ने दान का प्रसन्न लिया था। जो याचक जो वस्तु माँगता राजा उसे यह वस्तु देता। बलिके राज्यमें जीव-हिंसा मद्यपान अगम्यागमन चोरी और विस्वासघात—अन्य पाँच महापापोंका कहीं मामतक न था। सर्वत्र दया, दान और भुत्सवका बोलबाला रहता था। अन्तमें बलिराजाने वामन मूर्ति श्रीकृष्णको अपना सर्वस्व अर्पण किया। बलिकी अति दानवीरताके स्मारकके रूपमें श्रीकृष्णने बलिके नामसे तीन दिन रातका त्योहार निश्चित किया। यही हमारी बीवाली है। बलिके राज्यमें आलस्य मस्तिनता रोग और दारिद्र्यका अभाव था। बलिके राज्यमें या लोगोके हृदयमें अंधकार न था। सभी प्रेम से रहते थे। द्वेष मत्सर या असूयाका कारण ही न था। बलिकी राज्य जन साधारणके लिये अतिना सोकोपकारी था कि उसके कारण प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण उसके द्वारपाल बनकर रहे। अिसी कारण यह मिदचय किया गया कि बलिराजाके स्मारक स्वरूप अति त्योहारसे पहले साग बूझा-कचरा कीचड़ और गंदमीका नाश करें, जहाँ-जहाँ अंधेरा हो वहाँ दीपावलिकी घोषा करें लोगोके प्राण लेनेवाले यमराजका तर्पण करें पूर्वजोंका स्मरण करें मिष्टान्न भक्षण करें और सुगन्धित धूप-दीप तथा पुष्प-पत्रोंसे सुन्दरता बढ़ावें। अनि दिनों सायं कासकी घोषा अतिनी मनोहारी होती है कि यदा गधव किन्नर औपधि पिशाच यंत्र और मणि सभी भुत्सवका नृत्य करते हैं। बलि-राज्यका स्मरण करके लोग तरह-तरहके रंगोंसे शोक पूरते हैं, सफेद चाकस लगाकर भाँति भाँतिके मुन्टर चित्र बनाते हैं गाय, बैल आदि गृह-पशुओंका सजा-बजाकर भूमिका बसूस निभासते हैं थपठ और कनिष्ठ सब मिसकर

यष्टिकाकर्पणका खेल खसते हैं। यष्टिकाकर्पण यूरोपीय लोगोंके रस्सी खींचनेके 'टग ऑफ़ वॉर'—जैसा एक खेल है। प्रिंसीको हमने 'गजब्राह्म'का नया नाम दिया है। पुराने प्रमानेमें राजा लोग दीवालीके दिन अपनी राजधानीके सभी लड़कोंको सार्वजनिक रूपसे आमंत्रण देते थे और भूमसे खेल खसते थे।

सुरक्षित द्रव्योंकी मांजिश करके महाना तरह-तरहके दीये कटारमें जलाना और अष्ट-भिन्नोंके साथ मिष्ठान्नका मोहन करना दीवालीका प्रधान कार्यक्रम है। जिसके राज्यमें प्रवेश करना हो तो हर भस्तर असूया अपमान आदि सब भूलकर सबके साथ अकविल हो जाना और जिस तरह निष्पाप होकर नये वर्षमें प्रवेश करना हमारा प्राचीन रिवाज है।

मिठी दिन सरयभामाने धीकृष्णकी मन्त्रसे नरकासुरका नाश करने सोलह हजार राजकुमारोंको मुक्त किया था।

दीपावलिके उत्सवमें स्त्रियोंकी अपेक्षा नहीं की गयी है। स्त्री-पुरुषोंके सब सम्बन्धोंमें भावी-बहनका संबंध शुद्ध सत्त्विक प्रेम और समानताके अनुसासक होता है। पति पत्नीका या माता-पुत्रका सम्बन्ध बितना व्यापक और बितना सारविक अनुसासक नहीं होता।

धन-संरक्षक लेकर भावी पूज्य छत्रके पाँचों दिनोंके साथ यमराजका नाम जुड़ा हुआ है। क्या जिसका उद्देश्य क्या होमा ?

विन्द्रप्रस्थका राजा हंस मृगमाके लिये घूम रहा था। हैम नामक एक छोटेसे राजा ने मुसका आतिथ्य किया। असीदिन हैमके यहाँ पुत्रात्मक था। राजा आमन्दोत्सव मना ही रहा था कि अतनेमें भविष्यताने आकर कहा कि बिवाहके बाद थोड़े ही दिन यह पुत्र सर्प-दंशसे मर जायगा। हंस राजाने मुस पुत्रका बचानेका निश्चय किया। मुसने यमुना नदीके बहमें एक सुरक्षात घर बनवाकर हैमराजको वहाँ आकर रहनेका

६

दीवाली

-१-

बलि राजाने दानका व्रत किया था। जो माचर जो वस्तु माँगता राजा उसे वह वस्तु देता। बलिके राज्यमें जीव हिंसा मद्यपान अगम्यागमन चोरी और विस्वासघात—अन पान महापापोंका कहीं नामतक न था। सर्वत्र दया दाम और अस्त्रबका बोलवाला रहता था। अन्तमें बलिराजाने वामन मूर्ति श्रीकृष्णको अपना सर्वस्व अर्पण किया। बलिकी जिस दानवीरताके स्मारकके रूपमें श्रीविष्णुने बलिम् नामसे तीन दिन रातका त्योहार निश्चित किया। यही हमारी दीवाली है। बलिके राज्यमें आलस्य भस्मिता रोग और दारिद्र्यका अभाव था। बलिके राज्यमें या लोगोंके हृदयमें अंधकार न था। सभी प्रेम से रहते थे। द्वेष मत्सर या असूयाका कारण ही न था। बलि का राज्य जन साधारणके लिये अतिमा लोकोपकारी था कि उसके कारण प्रत्यक्ष श्रीविष्णु उसके द्वारपाल बनकर रहे। इसी कारण यह निश्चय किया गया कि बलिराजाके स्मारक-स्वरूप जिस त्योहारमें पहले साग दूध-क्वथर कीचड़ और मंदगीका नाश करें जहाँ-जहाँ अंधरा हो जहाँ दीपावलिकी शोभा करें, लोगोंके प्राण छेनेवाले अमराजका तर्पण करें पूर्वजोंका स्मरण करें, मिष्ठान्न भक्षण करें और सुगन्धित धूप-दीप तथा पुष्प-मालासे सुन्दरता बढ़ावें। अनि दिनों सायं कालकी शोभा अतिनी मनोहारी होती है कि यक्ष, गन्धर्व किन्नर औपदि पिशाच यत्र और भणि सभी अस्त्रबका मृत्यु करते हैं। बलि-राज्यका स्मरण करके लोग तरह-तरहके रंगोंमें पीक पूरते हैं सफेद चावस लगाकर मीठि मीठिके मुन्दर चित्र बनाते हैं गाय, बल आदि गृह-पशुओंको सजा घनाकर अन्नका जुलूस निकामते हैं थोप और बनिप्ट सब मिलकर

घटिकाकर्पणका खेल ससते हैं। घटिकाकर्पण यूरोपीय लोगोके रस्सी खींचनेके 'टग ऑफ़ वॉर'—जसा खेल है। किसीको हमने गजघाह का नया नाम दिया है। पुराने जमानेमें राजा लोग दीवालीके दिन अपनी राजधानीके सभी सड़कोंको सार्वजनिक रूपसे आमंत्रण देते थे और भूमसे खेल खेलते थे।

सुगंधित द्रव्योंकी मालिदा करके महाना तरह-तरहके दीये कतारमें जलाना और शिष्ट-मित्रोंके साथ मिष्ठान्नका भोजन करना दीवालीका प्रधान कार्यक्रम है। बल्कि राज्यमें प्रवेश करना हो तो होय मस्तर अमूया अपमान आवि सब भूझकर सबके साथ अकदिस हो जाना और जिस तरह निष्पाप होकर नये वर्षमें प्रवेश करना हमारा प्राचीन रिवाज है।

। किसी दिन सत्यमामने धीबुष्मकी मददसे मरकासुरका नाश करके सालह हजार राजबन्धुओंको मुक्त किया था।

दीपावलिके अस्तबमें स्त्रियोंकी अपेक्षा नहीं की गयी है। स्त्री-पुरुषोंके सब सम्बन्धोंमें भावा-बहूनका संबंध दृढ़ सखि-प्रेम और समानताके अस्मासका होता है। पति पत्नीका या माता-पुत्रका सम्बन्ध जितना व्यापक और जितना सात्विक अस्मासयुक्त नहीं होता।

घन-तेरतसे लेकर भाभी दूज तकके पाँचों दिनोंके साथ यमराजका नाम जुड़ा हुआ है। मरना, जिसका उद्देश्य क्या होता ?

मित्रप्रस्थया राजा हंस भुगयाके लिये घूम रहा था। हैय नामक एक छोटेसे राजा ने अस्का आतिथ्य किया। असीदिन हैयक यहाँ पुत्रोत्पन्न था। राजा आमन्दोत्पन्न बना ही रहा था कि मित्रनेमें भवितव्यताने आकर कहा कि विवाहके बाद चौथे ही दिन यह पुत्र सर्प-दंशसे मर जायगा। हंस राजाने पुत्रको बचानेका निश्चय किया। अस्ने यमुना नदी केक-मुरखिन धर बनवाकर हैमराजको बहा

निर्मन्त्रण दिया। सोसह सास बाद राजपुत्रका विवाह हुआ। विवाहसे ठीक चौथे ही दिन उस दुर्गम स्थानमें भी सर्प प्रकट हुआ और राजपुत्र मर गया। आनन्दको भड़ी अपार शोकमय बन गयी। फिर यमदूतोंको भी जिस करुण अवसर पर दया आयी और अमुहति यमराजसे यह बर माँग किया कि दीवालीके पाँच दिनमें जो छोग दीपोत्सव मनायें अतः जिस तरहकी आपत्ति न आवे।

यह सुनी जन-सेरसकी कहानी। मरक-चतुर्दशीके दिन यमराजका और भीष्मका तर्पण विशेषरूपसे कहा गया है। दीवाली अमावस्याका दिन। उस दिन यमलोकवासी पितरों का पूजन और ध्यात तो करना ही पड़ता है। प्रतिपदाके दिन यमराजसे सम्बन्ध रखनेवाली कोभी बचा नहीं कही गयी है, लेकिन ऐसा मान देनेमें कोभी हर्ज नहीं कि यमराज भी उस दिन अपना गया बहीसाठा सोसठे होंगे। भैयादूजक दिन यमराज अपनी बहन यमनाके घर भोजन करने जाते हैं। दीपावलीकी सम्बन्धिताके साथ यमराजका स्मरण रखनेमें अस्त्वकारोंका अदृश्य पाहे जो रहा हो लेकिन जिसमें शक नहीं कि उसका असर बहुत अच्छा होता होगा। जिसने अस्त्वबने भी संयमका पाठन किया होगा, वही यमराजके पाद्य में मुक्त रह सकेगा।

नवम्बर, १९२१

—२—

दीवानखाने में अकाश सुन्दर नील रसनेका रिवाज प्रत्येक घरमें हाता है। बाहरका कोभी व्यक्ति जाता है तो सहज ही उसकी मजूर उस तरफ जाती है और वह पूछ बैठता है—
‘वाह! कंसी बढ़िया नील है! यह आपको कहसि मिसी?’
लेकिन अजायबघरमें तो जहाँ देखिये वहाँ सुन्दर-ही-सुन्दर नीलें दिखायी देती हैं। अमुह देखकर मनूष्य बहुत खुश होता है। लेकिन साथ ही वह अतना ही पसोपेदमें भी पड़ जाता

है। यह हमो सोचमें रहता है कि क्या दण्ड ।

हमारी दीवाली त्योहारोंका अंश असा ही अजायब घर है। जिसे सब त्योहारोंका स्नेह-सम्पर्क भी माना जा सकता है। दीवालीका त्योहार पाँच दिनोंका माना जाता है। लेकिन सब पूछिय ता ठेठ नवरात्रिक त्योहारमें अमका प्राग्ग हाता है और माजीजीकी मेटमें अमका आनन्द अपनी परिमीमा तक पहुँच जाता है।

घात्रामि प्रत्येक त्योहारका महात्म्य आर कथा भी गयी है। दीवालीक बारेमें अितनी कहानियाँ हैं कि यदि 'दीवाली महात्म्य' लिखा जाय ता बहु अरु बडा पोवा घन जायगा। घनतरसकी कथा अलग नरक चौमकी कहानी अलग और अमावस (दीवाली) की अपनी अरु कहानी अलग। अमक बाद नया मास शुरू होना है। और दूजक दिन बहनके घर माजी अतिथि बनकर जाना है। दीवाली गृहस्थाश्रमो त्योहार है जनताका त्योहार है। धावणीक दिन धम और घात्र प्रधान होते हैं द्वाहरेक दिन मुठ और घात्रात्म्य प्रमुख रहते हैं दीवालीक दिन शमी और घनको प्राधान्य प्राप्त हाता है और होमी तो तेल और रंग-रागका स्याहार है। अम मरु मनुष्योंमें चार वण है असी तरह त्याहारमें भी चार वण हो गये हैं।

पुरातन कालमें लोग धावणीक दिन जहात्रामि बैठकर ममुद्र पार देश-देशान्तरमें सफर करने जान थे। द्वाहरेक दिन राजा लोग और योडागण अपनी सरहदाको पार करके मनुपर पड़ाभी करने निकलते थे और दीवालीके दिन राजा लोग और व्यापारीगण स्वदेश वापस आकर बीजुन्विक मुखका अुपयोग करते थे।

पुराणोंमें कथा है कि नरनामुर नामका अरु पराक्रमी राजा प्राग्ग्यातिथमें राज करता था। भूटानके दक्षिण तरफ जा प्रदेश है मुम प्राग्ग्यातिथ कहते थे। आज बहु अमम प्रान्त

निर्मन्त्रण दिया। सोलह साल बाद राजपुत्रका विवाह हुआ। विवाहसे ठीक चौथे ही दिन भुस दुर्गम स्थानमें भी सर्प प्रकट हुआ और राजपुत्र मर गया। आनन्दकी घड़ी अपार शोकमय बन गयी। क्रूर यमदूतोंको भी मिस करण अबसर पर दया आवी और उन्होंने यमराजसे यह बर माँग लिया कि दीवालीके पाँच दिनोंमें जो लोग शीपोत्सव मनावें उनपर जिस तरहकी आपत्ति न आवे।

यह सुनी घन-तेरसकी कहानी। मरक-चतुर्दशीके दिन यमराजका और मीष्मका ठर्पण विशेषरूपसे कहा गया है। दीवाली जमावन्त्याका दिन। भुस दिन यमलोकवासी पितरों का पूजन और श्राद्ध तो करना ही पड़ता है। प्रतिपदाके दिन यमराजस सम्बन्ध रखनेवाली कोभी क्या नहीं कही गयी है, किन्तु ऐसा मान लेनेमें कोभी हर्ज नहीं कि यमराज भी भुस दिन अपना नया बहीलाठा सोसते होंगे। मैयादूजके दिन यमराज अपनी बहन यमुनाके घर भोजन करने जाते हैं। शीपावलीकी स्वच्छन्दताके साथ यमराजका स्मरण रखनेमें उत्सवकारोंका बहुमन चाहे जो रहा हो लेकिन जिसमें शक नहीं कि भुसका असर बहुत अच्छा होता होगा। जिसने उत्सवमें भी समयका पासन किया होगा, वही यमराजके पाछ न मुक्त रह सकेगा।

नवम्बर, १९२१

-२-

दीवानखाने में जेकाब सुन्दर बीज रखनेका रिवाज प्रत्येक घरमें होता है। बाहरका कोभी व्यक्ति जाता है, तो सहज ही भुसकी नजर भुस तरफ जाती है और वह पूछ बैठता है—
‘वाह! कैसी बढ़िया बीज है! यह आपको कहाँसे मिली?’
लेकिन अजायबघरमें तो जहाँ देखिये वहाँ सुन्दर-ही-सुन्दर बीजें दिखायी देती हैं। जगहें देखकर अनुपम बहुत सुघ होता है। लेकिन साथ ही वह भुतना ही पसोपेशमें भी पड़ जाता

है। यह इसी सोचमें रहता है कि क्या देखू ?

हमारी दीवाली त्योहारोंका एक ऐसा ही अजायब-घर है। जिसे सब त्योहारोंका स्नेह-सम्मेलन भी माना जा सकता है। दीवालीका त्योहार पाँच दिनोंका माना जाता है। लेकिन सब पूछिय तो ठेठ नवरात्रिसे त्योहारसे अमरा प्राग्भ होता है और माजीजीकी भेटमें जिसका आनन्द अपनी पगिरीमा तक पहुँच जाता है।

शास्त्रमें प्रत्येक त्योहारोंका महारम्य और कथा दी गयी है। दीवालीके बारेमें जितनी कहानियाँ हैं कि यदि दीवाली महारम्य लिखा जाय तो बड़ बेश बड़ा पोषा बन जायगा। पनवरसकी कथा असंग नरक पाँदसकी कहानी अग्न और अमावस (दीवाली) की अपनी एक कहानी अलग। जिनके बाद नया साल शुरू होता है। और दूजके दिन बहमके घर भाजी अतिथि बनकर जाता है। दीवाली गृहस्पात्रमी त्योहार है जनताका त्योहार है। धावणीक दिन धर्म और धान्न प्रदान होते हैं दगाहरेके दिन युद्ध और दास्त्वान्न प्रमुख रहते हैं दीवालीक दिन शन्मी और धनको प्राधान्य प्राप्त होता है और होमी तो लेख और रंग रागका त्याहार है। जिस तरह मनुष्योंमें चार वन है, उसी तरह त्योहारोंमें भी चार वन हो गये हैं।

पुरातम कालमें लोग धावणीक दिन जहाजमें बैठकर समुद्र पार देव-देवताम्हमें सफर करने जाते थे। दगाहरेक दिन राजा लोग और योद्धागण अपनी सरहद्दाको पार करके मक्षुपर चढ़ाई करने निकलते थे और दीवालीके दिन राजा लोग और व्यापारीगण स्वदेव वापस आकर बौटुम्बिक मुक्तका भुपभोग करते थे।

पुराणोंमें कथा है कि मरकासुर नामका एक गराज्मी राजा प्राग्ग्यातिथमें राज करता था। भूटामने दक्षिण तरफ को प्रदेश है भूम प्राग्ग्योतिथ कहते थे। आज वह अमम प्रान्त

में सम्मिश्रित है। नरकासुरका दूसरे राजाओंसे लड़ना तो बड़ी भरके सिये सहन कर लिया जा सकता था किन्तु उस दुष्टने स्त्रियोंको भी सताना शुरू किया। अुसके कारागारमें सोझह हजार राजकन्याएँ थीं। श्रीकृष्णने बिचार किया कि यह स्थिति हमारे सिये कलकल्प है। अब तो नरकासुरका नाश करना ही होगा। सत्यभामाने कहा— आप स्त्रियोंके अुधार के लिये जा रहे हैं तो फिर मैं घर कैसे रह सकती हूँ? नरकासुरके साथ मैं ही लड़ूंगी। आप चाहे मेरी मददमें रहें।”

श्रीकृष्णने यह बात मान ली। अुस दिन रातमें सत्यभामा आगे वैठी थीं और श्रीकृष्ण मददके लिये पीछेकी तरफ बैठे थे। चतुर्वेदीके दिन नरकासुरका नाश हुआ। बेश्व स्वच्छ हो गया। लोगोंने आनन्द मनाया। यह बसानेके लिये कि नरकासुरका बड़ा भारी जुलूम दूर हुआ लोगोंने रातको दीपोत्सव मनाया और अमावसकी रातमें पूर्णिमाकी शोभा दिखमायी।

लेकिन यह नरकामुर अेक बार मरनेसे मरनेवाला नहीं है। अुसे ताँ हर साल मारना पड़ता है। बीमासेमें सब जगह कीचड़ हो जाती है अुसमें पेड़के पत्ते गोबर कीड़े बगैरा पड़ जाते हैं और जिस तरह गाँवके आस-पास नरक—गदमी— फैल जाता है। बपकि बाद जब भादोंकी धूप पड़ती है तो जिस नरककी दुर्गन्ध हवामें फैल जाती है जिससे लोग बीमार पड़ते हैं। जिसलिये यहादुर लोगोंकी आरोग्य-सेवा बुदाली फाबड़ा बगैरा लेकर जिस नरकमें साथ लड़ने जायँ गाँवके आस-पासके नरकका नाश करे, और घर आकर बन्नपर लेस मसकर नहाये। गीताला तो साफ़ की हुयी होती ही है अुसमें से मच्छरोंको निकाल देनेके लिये रात बहूँ दीया जलाये झुआँ करे और फिर प्रसन्न होकर मिष्टान्नों और पक्वान्नोंका भोजन करे।

❀

❀

❀

दीवालीके बाद नया वर्ष शुरू होता है, और घरमें नया

बनाज आता है। हिन्दुओंके घरोंमें वेदकाससे लेकर आजतक जिस नवाम्नकी विधि का ध्यापूर्वक पालन होता है। महाराष्ट्रमें जिस भोजनसे पहले भेक कड़ुआ फलका रस चखनेकी प्रथा है। जिसका अद्देश्य यह होगा कि कड़ुआ में हनत किये बिना मिष्टान्न नहीं मिल सकता। भगवद्गीतामें लिखा है कि आरम्भमें जो पहरेके समान है, और अन्तमें अमृतके समान वही सात्विक भोजन है। गोआमें दीवालीके दिन चिमुकेका मिष्टान्न बनाते हैं और जितने भी मिष्ट-मित्र हों उन सबको भोजन दिन निर्मलप देते हैं। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्रत्येक मिष्ट-मित्रके यहाँ जाना हो चाहिये। प्रत्येक घरमें फलाहार रखा रहता है भोजनसे अकाप टुकड़ा चबकर आशमी घूसरे पर जाता है। व्यवहारमें कड़ुआ आयी हो सुखमनी बँधी हो या जो भी कुछ हुआ हो दीवालीके दिन मनसे वह सब निकाल देते हैं और नया प्रीति-सम्बन्ध जोड़ते हैं। जिस प्रकार व्यापारी दीवाली पर सब लेन-देन चुका देते हैं और नये बहोलातोंमें बाकी नहीं दीजते उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति नये वपके आरम्भमें हृदयमें कुछ भी वैर या जहर बाकी नहीं रहने देता। जिस दिन बस्तीमेंसे गरब-गदगी-निवृत्त जाय हृदयसे पाप निकल जाय पात्रोंमेंसे अयकार निकल जाय हृदयसे और सिरपरसे कर्ज दूर हो जाय भोजन दिनसे बढ़कर दूसरा पवित्र दिन कौनसा हो सकता है ?

३०-११-२१

—३—

जो सोसहों आने पसनी है जिसके बारेमें लज्जा भी शक नहीं, भेसी चीज जिन्दगीमें कौनसी है ? सिर्फ भेक और वह है मृत्यु !

राजा हो या रक, भूखी कृष्णा हो या सावण्यवती बिन्दु मती घेर हो या गाय बाज हो या फबूतर, मृत्युकी भेंट तो हरबनसे होने ही वाली है। अथवा यह है कि जिस निश्चित

अतिथिका स्वागत हम किस तरह करें ?

हम जिस प्रकार उसे पहचानते हों उसी प्रकार उसका स्वागत करें। मृत्युका स्वरूप कटहल-जैसा है। ऊपर तो सब काँटे-ही-काँटे होते हैं अन्दरवा स्वाद म मासूम कैसा हो। मृत्यु अर्थात् बड़ी-मरका आराम मृत्यु अर्थात् नाटकके दो अर्कोंके मध्यावकाशकी अवधिका मृत्यु अर्थात् बाणीके अस्फुटित प्रवाहमें आनेवाले विरामचिह्न। अंग्रेज बचि दूजके चाँदका स्वागत करते समय 'बालचन्द्रकी गोदमें बूढ़चन्द्र कहकर उसका वर्णन करते हैं। अमावस तक पुराना चन्द्र सूख जाता है क्षीण हो जाता है। अब वह अपने पैरोंपर कैसे खड़ा होगा ? जिसलिये उससे पैदा हुआ बालचन्द्र अपनी बारीक भुजाओं फैलाकर उस बूढ़े काले चन्द्रको अठा लेता है, और दूसरे दिन पश्चिमके रंगमंच पर ले आता है और यों छारी बुनियाद द्वारा तालियाँ बजाकर किसे आनेवाले स्वागतको स्वीकार करता है। मुसलमान लोग 'बीवना चाँद' कहकर असीका स्वागत करते हैं। मृत्यु तो पुनर्जन्मके लिये ही है। प्रत्येक नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ीका ठेक लेकर जबानीके ओशमें आने बढ़ती रहती है और पुरानी पीढ़ी बुढ़ापेके परावर्तनका महसूस करती हुई क्षीण हो जाती है। यह कैसे मुलाया जा सकता है कि बुढ़ा दूँडा, जाड़ा प्रफुल्ल नववसन्तको अपनी पकड़कर ले आता है ? जिस बातको मुलानेसे काम न चलेगा बि हिमन्तकी काटनेवाली टंडवमें ही वसन्तका प्रसव है।

दीवालीके दिन वसन्तकी अपेक्षासे, वसन्तकी मार्ग प्रतीक्षासे अगर हम दीपोत्सव कर सकते हैं मिष्टान्न भोजन कर सकते हैं आनन्द और मंगलताका अनुभव कर सकते हैं तो हम मृत्युसे क्यों न खुश हों ?

दीवाली हमें सिखाती है कि मोतका रोना मत्त रोना मृत्युमें ही नवयौवन प्रदान करनेकी, नवजीवन देनेकी शक्ति है दूसरोंमें नहीं।

दीवालीका लयीहार मोतका बुत्तब है मृत्युका अभिनन्दन है मृत्यु परकी थडा है । निराशासे अत्यन्त हानेवाली आशा का स्वागत है ।

रुद्र ही शिव है मृत्युका दूसरा रूप ही जीवन है ।

यह किसे अच्छा न लगेगा कि यमराज अपनी बहनक घर जाये ? मृत्यु नित्यनूतनताके घर बुत्तब मनाय ?

मृत्यु अग्नि नहीं बल्कि सेजस्वी रत्नमणि है जिस छूनेमें कोभी सतरा नहीं ।

अक्टूबर, १९९२

७

वसन्त पंचमी

वसन्त पंचमी अर्थात् ऋतुराजका स्वागत ।

माघ शुक्ला पंचमीको हम वसन्त पंचमी कहत है लेकिन प्रत्येक व्यक्तिके लिए असी दिन वसन्त पंचमी नहीं होती । ठंड छूनवाले मनुष्यके लिये वह भित्तमी जल्दी नहीं आती ।

वसन्त पंचमी प्रकृतिका जीवन है । जिसकी रहन-सहन प्रकृतिसे अलग न पड़ गयी हो जो प्रकृतिक रंगम रंग गया हो वह मनुष्य बिना कहे ही वसन्त पंचमीका अनुभव करता है । नदीके क्षीण प्रवाहमें अकाशेक आयी हुयी जोरकी वादका जिस प्रकार हम अपनी आँसोंसे साफ देखते हैं असी प्रकार हम वसन्तका भी आता हुआ दण्ड देखते हैं । अण्डाला वह अंक ही समयपर सबके हृदयोंमें प्रवेश नहीं करता ।

जब वसन्त आता है तो जीवनके अग्रादण माघ आता है । जीवनमें सुन्दरता होती है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि अग्रे हमेंना क्षम भी होता है । जीवनमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना बहुत ही कठिन हो जाता है । यही हास्य वसन्तमें भी होती है । तारुण्यकी तरह वसन्त भी मनमोहक और ज्वलन् होता है । मिन दिनों सभी जाडा

अतिथिका स्वागत हम किस तरह करें ?

हम जिस प्रकार उसे पहचानते हों उसी प्रकार उसका स्वागत करें। मृत्युका स्वरूप कटहल-जैसा है। ऊपर तो सब काँटे-ही-काँटे होते हैं अन्दरका स्वाद न मालूम कैसा हो ! मृत्यु अर्थात् घड़ीमरका आराम मृत्यु अर्थात् नाटकके दो अंकोंके मध्याह्नकाशकी मयनिका मृत्यु अर्थात् वाणीके अस्फुटित प्रवाहमें आनेवाले विरामचिह्न। अग्रेज कवि पूजके पाँवका स्वागत करते समय 'बालचन्द्रकी गोदमें बैठचन्द्र कहकर उसका वर्णन करते हैं। अमावस तक पुराना चन्द्र सूख जाता है कीम हो जाता है। अब वह अपने पीरोंपर कैसे सड़ा होगा ? जिसलिये उससे पैदा हुआ बालचन्द्र अपनी भारीक मुजाओं फैलाकर उस बड़े काले चन्द्रको अठा लेता है और दूसरे दिन पश्चिमके रंयमंज पर ले आता है और यों सारी दुनिया द्वारा तालियाँ बजाकर किये जानेवाले स्वागतको स्वीकार करता है। मुसलमान लोग 'दीवाना चाँद' कहकर इसीका स्वागत करते हैं। मृत्यु तो पुनर्जन्मके लिये ही है। प्रत्येक नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ीका तेज लेकर ज़बानीके ओझमें आये बढ़ती रहती है और पुरानी पीढ़ी बुढ़ापेके पराबलंबनको महसूस करती हुमी झुट हो जाती है। यह कैसे भुसाया जा सकता है कि बुढ़ा टूटा जाड़ा प्रफुल्ल नववसन्तको अगुनी पकड़कर ले आता है ? जिस बातको भुसानेसे काम न चलेगा कि हेमन्तकी काटनेवाली टंडकमें ही वसन्तका प्रसव है।

दीवालीके दिन वसन्तकी अपेक्षासे, वसन्तकी माग-प्रतीक्षासे अगर हम दीपोत्सव कर सकते हैं मिष्टान्न भोजन कर सकते हैं, आमन्त्र और मंगलताका अभुमन कर सकते हैं तो हम मृत्युसे क्यों न भुग हों ?

दीवाली हमें सिखाती है कि मौतका रोमा मत्र रोमा मृत्युमें ही नवमौखन प्रदान करनेकी, नवजीवन देनेकी क्षक्ति है दूसरोंमें नहीं।

दीवालीका रथोहार मीतका अुत्सव है मृत्युका अभिनन्दन है मृत्यु परकी थडा है । निराशासे अुत्पन्न होनेवाली व्याघ्रा का स्वागत है ।

रुद्र ही शिव है, मृत्युका दूसरा रूप हा जीवन है ।

यह किसे अच्छा न लगेगा कि यमराज अपनी बहनक घर जाये ? मृत्यु निरयनूतमठाके घर अुत्सव मनाये ?

मृत्यु अग्नि नहीं, बल्कि तेजस्वी रत्नमणि है जिस छूनेमें कोभी सतरा नहीं ।

मन्सूर, १९२२

७

वसन्त पंचमी

वसन्त पंचमी अर्थात् ऋतुराजका स्वागत ।

माघ दुक्ता पंचमीको हम वसन्त पंचमी कहत हैं लेकिन प्रत्येक व्यक्तिसे लिए अुसी दिन वसन्त पंचमी नहीं होती । ठंडे सूनवाले मनुष्यसे लिये वह भिन्ननी अस्ती नहीं आती ।

वसन्त पंचमी प्रकृतिका जीवन है । जिसकी रहन-सहन प्रकृतिसे अलग न पड गयी हो जो प्रकृतिसे रंगमें रंग गया हो, वह मनुष्य बिना कहे ही, वसन्त पंचमीका अनुभव करता है । नदीके क्षीण प्रवाहमें अकाअक आयी हुयी जोरकी बाढ़का जिस प्रकार हम अपनी आँखोंसे ताफ देखते हैं अुसी प्रकार हम वसन्तका भी आता हुआ दृश्य सकते हैं । अस्मत्ता वह अक ही समयपर सबसे हृदयोंमें प्रवेश नहीं करता ।

जब वसन्त आता है तो जीवनके अुमादके साथ आता है । यौवनमें सुन्दरता होती है लेकिन यह नही कहा जा सक्ता कि अुसमें हमेशा दाम भी होता है । यौवनमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना बहुत ही कठिन हा जाता है । यही हालत वसन्तमे भी होती है । सारण्यकी तरह वसन्त भी मनमोही और चंचल होता है । भिन्न दिनों कभी आता

अतिथिका स्यात्त हम किस तरह करें ?

हम जिस प्रकार उसे पहचानते हों उसी प्रकार उसका स्वागत करें। मृत्युका स्वरूप कटहल-जैसा है। ऊपर तो सब काँटे-ही-काँटे होते हैं अन्तरका स्वाद न मालूम कैसा हो ! मृत्यु अर्थात् बड़ीभरका आराम मृत्यु अर्थात् नाटकके वो अर्कोने मध्याह्नकाशकी यवनिका मृत्यु अर्थात् वाणीके अस्त्रलिखित प्रवाहमें जानेवाले विरामचिह्न। अंग्रेज कवि दूजके चाँदका स्वागत करते समय 'बालचन्द्रकी गोदमें बूझचन्द्र कहकर उसका वर्णन करते हैं। बमावस तक पुराना चन्द्र सूख जाता है क्षीय हो जाता है। अब वह अपने पैरोंपर कैसे खड़ा होगा ? जिसलिये उससे पैदा हुआ बालचन्द्र अपनी भारीक मुबारके फैलावर उस बूढ़े काले चन्द्रको भठा सेठा है और दूसरे दिन पश्चिमके रंगमंच पर ले जाता है और यों सारी दुनिया द्वारा तालियाँ बजाकर किये जानेवाले स्वागतको स्वीकार करता है। मुसलमान लोग 'बीवका चाँद' कहकर मिस्रीका स्वागत करते हैं। मृत्यु तो पुनर्जन्मके लिये ही है। प्रत्येक नवी पीढ़ी पुरानी पीढ़ीका तेज लेकर जबानीके ओलमें आगे बढ़ती रहती है और पुरानी पीढ़ी बुढ़ापेके पराबलंबनको महसूस करती हुई क्षुब्ध हो जाती है। यह कैसे मुझाया जा सकता है कि बुढ़ा दूँठा जाड़ा प्रफुल्ल नववसन्तको अंगुली पकड़कर ले जाता है ? जिस बातको मुझामेसे काम न चलेगा कि हेमन्तकी काटनेवासी ठंडकमें ही वसन्तका प्रसव है।

दीवालीके दिन वसन्तकी अपेक्षासे, वसन्तकी मार्ग प्रतीक्षासे अगर हम दीपोत्सव कर सकते हैं मिष्टान्न भोजन कर सकते हैं, आनन्द और मंगलताका अनुभव कर सकते हैं, तो हम मृत्युसे क्यों न खुश हों ?

दीवाली हमें सिखाती है कि मौतका रोमा मत रोमा मृत्युमें ही नवयौवन प्रदान करनेकी, नवजीवन देनेकी शक्ति है दूसरोंमें नहीं।

दीवालीका रथीहार मीतका बुत्तब है मृत्युका अभिनन्दन है मृत्यु परकी थडा है । निराशासे बुत्तन्न हानेवाली आभा का स्वागत है ।

रुद्र ही पिब है, मृत्युका दूसरा रूप ही जीवन है ।

यह किसे अच्छा न लगेगा कि यमराज अपनी बहनक घर जाये ? मृत्यु नित्यमृतताके घर बुत्तब मनाये ?

मृत्यु अस्मि नहीं, अस्तिक तेजस्वी रत्नमणि है जिसे छूनेमें कोमो सतरा नहीं ।

अक्तूबर, १९२२

७

वसन्त पंचमी

वसन्त पंचमी अर्थात् ऋतुराजका स्वागत ।

माघ दुक्का पंचमीको हम वसन्त पंचमी कहत है लकिन प्रत्येक व्यक्तिके लिए असी दिन वसन्त पंचमी नहीं होती । ठंडे छूनवाले मनुष्यके लिये वह बितनी जल्दी नहीं आती ।

वसन्त पंचमी प्रवृत्तिका जीवन है । जिसकी रहन-सहन प्रकृतिस अलग न पड गयी हो जो प्रवृत्तिके रंगम रंग गया हो, वह मनुष्य बिना कहे ही वसन्त पंचमीका अनुभव करता है । नदीके क्षीण प्रवाहमें अकाशमें आसी हुई जोरकी वादृका जिस प्रकार हम अपनी आँसोंसे साफ देखते हैं असी प्रकार हम वसन्तको भी आता हुआ दग सकत हैं । अव्यवस्था वह एक ही समयपर सबके हृदयोंमें प्रवेश नहीं करता ।

जब वसन्त आता है तो यौवनक आभादेके साथ आता है । यौवनमें सुन्दरता होती है अकिन यह नहीं कहा जा सकता कि अस्ममें हमेशा दग भी होता है । यौवनमें दारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना बहुत ही कठिन हो जाता है । यही हालत वसन्तमें भी होती है । तादृश्यका तरह वसन्त की मनमोजी और चंचल होता है । जिन दिनों वभी जाडा

अतिथिका स्वागत हम किस तरह करें ?

हम जिस प्रकार उसे पहचानते हों वृत्ती प्रकार उसका स्वागत करें । मृत्युका स्वरूप कटहल-जैसा है । ऊपर तो सब काटे-ही-काटे होते हैं अन्दरका स्वाद न मालूम कैसा हो ! मृत्यु अर्थात् घड़ीमरका आराम मृत्यु अर्थात् माटकके दो अर्कोकि मम्पाबकासकी यवनिका मृत्यु अर्थात् बाणीके अस्त्वसित प्रवाहमें आनेवाले विरामस्थित । अग्नेज बवि दूजके चाँदका स्वागत करते समय 'बालचन्द्रकी गोवर्मे बूढ़चन्द्र कहकर उसका बर्नन करते हैं । अमावस तक पुराना चन्द्र सूख जाता है क्षीय हो जाता है । अब वह अपने पैरोंपर कैसे खड़ा होगा ? जिसलिये उससे पैदा हुआ बालचन्द्र अपनी बारीक भुजाओं फैलाकर उस धूँढ़े काले चन्द्रको अठा लेता है, और दूसरे दिन पश्चिमके रंगमंच पर ले जाता है और यों सारी बुनियाद द्वारा तामियाँ धजाकर किये जानेवाले स्वागतको स्वीकार करता है । मुसलमान लोग 'अधिका चाँद' कहकर अिसीका स्वागत करते हैं । मृत्यु तो पुनर्जन्मके लिये ही है । प्रत्येक नवी पीढ़ी पुरानी पीढ़ीका तैज लेकर जबानीके ओठमें आगे बढ़ती रहती है और पुरानी पीढ़ी बुढ़ापेके परावर्तनको महसूस करती हुआ लुप्त हो जाती है । यह कैसे मुझाया जा सकता है कि बुढ़ा टूँठा जाड़ा प्रफुल्ल नववसन्तको अगुसी पकड़कर ले जाता है ? जिस बातको मुझानेसे काम न चलेगा कि हेमन्तकी काटनेवाली ठंडकमें ही वसन्तका प्रसव है ।

दीवालीके दिन वसन्तकी अपेक्षासे, वसन्तकी मार्ग प्रतीक्षासे अगर हम दीपोत्सव कर सकते हैं मिष्टान्न भोजन कर सकते हैं आनन्द और मंगलताका अनुभव कर सकते हैं तो हम मृत्युसे क्यों न खुश हों ?

दीवाली हमें सिखाती है कि मौतका रोना मत रोना मृत्युमें ही नवयौवन प्रदान करनेकी, नवजीवन देनेकी शक्ति है दूसरोंमें नहीं ।

दीवालीका रथीहार भीतका भुत्सव है मृत्युका अमिनन्दन है, मृत्यु परकी श्रद्धा है। निराशासे व्युत्पन्न हानेवाली आशा का स्वागत है।

छह ही दिवस है, मृत्युका दूसरा रूप ही जीवन है।

यह किस्म बख्शा न सगेगा कि यमराज अपनी बहनक घर जायें ? मृत्यु नित्यमृत्युनताके घर भुत्सव मनाये ?

मृत्यु अग्नि नहीं, बल्कि सेजस्वी रत्नमणि है जिस छूनेमें कोभी क्षतरा नहीं।

बल्लुवर १९२२

७ ३

वसन्त पंचमी

वसन्त पंचमी अर्थात् ऋतुराजका स्वागत ।

माघ शुक्ला पंचमीको हम वसन्त पंचमी कहते हैं लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के लिए असी दिन वसन्त पंचमी नहीं होता। ठंडे खूनवाले मनुष्यके लिये वह अतिनी जल्दी नहीं आती।

वसन्त पंचमी प्रकृतिका जीवन है। जिसकी रहन-सहन प्रकृतिसं अलग न पड़ गयी हो जो प्रकृति के रंगमें रंग गया हो वह मनुष्य बिना वह ही वसन्त पंचमीका अनुभव करता है। नदीके क्षीण प्रवाहमें अकाभक आयी हुयी जोरका बाढ़वा जिस प्रकार हम अपनी आँसोंसे साफ़ देखते हैं असी प्रकार हम वसन्तको भी आता हुआ देख सकते हैं। व्यस्तता, वह अंक ही समयपर सबके हृदयोंमें प्रवेश नहीं करता।

जब वसन्त आता है तो जीवनक अग्रगण्य साथ आता है। जीवनमें सुन्दरता होती है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि भूषण हमेशा क्षम भी होता है। जीवनमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना बहुत ही कठिन हो जाता है। यही हालत वसन्तमें भी होती है। तादृश्यकी तरह भी मनमोही और चंचल होता है। दिन दिनों

मालूम होता है, कमी गरमी कमी जी अंबने लगता है ता कमी अस्थिर मालूम होने लगता है । जोभी हमी शक्ति को आड़े में फिरसे प्राप्त किया जा सकता है । मगर आड़े में प्राप्त की हुयी शक्ति को वसन्त में संचित कर रखना आसान नहीं है । वसन्त में संयम का पालन किया जाय, तो सारे वर्ष के लिये आरोग्य की रक्षा हो जाती है । वसन्त ऋतु में जीवमात्र पर जेक चित्ताकर्षक कान्ति छा जाती है पर वह अतनी ही खतरनाक भी होती है ।

वसन्त के अस्थिरता में संयम की भाषा खोमा नहीं देती सहन भी नहीं होती परन्तु किसी समय अस्सी अत्यन्त आवश्यकता होती है । अगर क्षीण मनुष्य पथ्यसे रहे तो अस्से कौन आश्चर्य की बात है ? अस्से लाभ भी क्या ? किसी तरह जीवित रहने में क्या स्वास्त्य है ? सुरक्षित वसन्त ही जीवन का आनन्द है ।

वसन्त अङ्गाङ्ग होता है । जिसमें भी प्रकृति का ठाण्डा ही प्रकट होता है । जितने ही फूल और फल मुरझा जाते हैं । मानो प्रकृति आड़े की कंबूसी का बवला ले रही हो । वसन्त की समृद्धि कोभी आश्चर्य समृद्धि नहीं । जितना कुछ दिखायी देता है अतना टिकता नहीं ।

राष्ट्र का वसन्त भी अक्सर अङ्गाङ्ग होता है । जितने ही फूल और फल बड़ी-बड़ी मायाओं दिखाते हैं लेकिन परि पक्ष होने से पहले ही मुरझाकर गिर पड़ते हैं । सच्चे वही हैं जो धरतु ऋतु तक कायम रहते हैं । राष्ट्र के वसन्त में संयम की बाणी अग्रिम मालूम होती है, परन्तु वही पथ्यकर होती है ।

अस्सव में विनय समृद्धि में स्थिरता जीवन में संयम—यही सफल जीवन का रहस्य है । फूलों की सार्थकता किसी बात में है कि अस्सव वर्ष फल के रस में परिणत हो ।

वसन्त पंचमी के अस्सव की सृष्टि न तो आश्चर्य का कारण है और न अस्सव को अस्से स्वीकार ही किया है । अस्स तो कवियों और गायकों, तरुणों और रसिकों ने जन्म दिया है ।

कोयलने मुझे आमन्त्रण दिया है और फूलोंने मुझका स्वागत किया है। वसन्तके मानी हैं पक्षियोंका गान आनन्द-मञ्जरियों की सुगन्ध सुन्न अन्नोकी विविधता और पवनकी चञ्चलता। पवन तो हमेशा ही चञ्चल होता है लेकिन वसन्तमें वह विनायक भावसे झिड़ा करता है। अही जाता है वही पूरे जोश-मरोड़के साथ जाता है अही बहता है, वही पूरे वेगसे बहता है जब गाता है तब पूरी शक्तिके साथ गाता है और थोड़ी देरमें बदल भी जाता है।

वसन्तसे समीतका नया सूत्र शुरू होता है। गायक माठों पहर वसन्तके आलाप ले सकते हैं। वे न तो पूर्व रात्रि देखते हैं, न अन्तर रात्रि।

जब संयम, औचित्य और रस तीनोंका संयोग होता है तभी संगीतका प्रवाह चलता है। जीवनमें भी अकेला संयम स्मयानवन् हो जायगा अकेला औचित्य दमस्क्य हो जायगा और अकेला रस दणगीबी विनासितामें ही खप जायगा। भिन चीनोंका सयाग ही जीवन है। वसन्तमें प्रकृति हमें रसकी बाड़ प्रदान करती है। अतः समय संयम और औचित्य ही हमारी पूंजी होने चाहिये।

जबरी, १९२३

८

हरिणीका स्मरण

अक विनास बन था। बीस-बीस तीस-तीस कोस तक न ओपड़ीका पत्ता था न मुसाफिरोंके कामचलायू चूल्होंका। वनमें अक रमणीय सासाब था। सासाबके पास कुछ हरिण रहते थे। सासाबके किनारे खेल्का अब पड़ था। अंस पेड़की नीचे पापापम्पमें महादेवजी विराजमान थे। हरिण रोज सासाबमें महादेव महादेवजीके दर्शन करते और चरने जाते। सापहरको भाकर बरने पेड़के नीचे बिथाम करते जामको

छायायका पायी पीकर महादेवजीके दर्शन करते और सा जाते बिना बोली छात्र पढ़ ही हरिणोंको धर्मका ज्ञान हुआ था जिसलिये वे सन्ताप-पूर्वक अपना निर्दोष जीवन व्यतीत करते थे।

माधका महोमा था । कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिनकी बात है । अरे विकराल व्याध अूस बममें भुसा । धाम हुआ ही चाहत थी । व्याध बहुत ही भूसा था । व्याधाकी भूसा अैसी-बैसी भूसा नहीं होती । अगर अुन्हें कुछ न मिले तो वे कच्चा मांस ही खाने बैठ जाते हैं । लेकिन हमारे जिस व्याधको अपनी भूसाका दुःख न था—'घरमें खान-बखाने भूसे हैं अुन्हें क्या खिसाऊँ ? क्या मुह केवर भर जाऊँ ? अगर छिकार न मिला तो खाली हाथ घर जानेकी अपेक्षा रात बनमें ही रह जाना अच्छा होगा—'सायब कुछ हाथ लग जाय । जिस तरह सोचता हुआ वह तालाबके किनारे जाया और बेस्के पेड़पर चढ़कर बैठ गया ।

अपने आठ-बच्चाके भरण-पोषणके लिये स्वयं बहुत कष्ट भुठाने और सत्रोंका सामना करनेको ही वह अपना धर्म समझता था । जिससे अधिक व्यापक धर्मका ज्ञान अुम नहीं था ।

रात हुई । कृष्णपक्षकी चार अघरी काली रात । कुछ दिसाभी न पड़ता था । व्याधने तालाबकी आर दलनमें रकाबट डालनेवाले असक पत्तोंको तोड़-तोड़ कर नीचे फेंक दिया । अितनेमें वहाँ दो चार हरिण पायी पीने आय । पेड़पर बैठ व्याधका दलबग व चौक पड़ और निराशाभरे स्वरमें बोले—

'हे व्याध अपने धनुषपर बाण न चढ़ा । हम मरनेको तैयार हैं पर हमें अितना समय दे द कि हम घर जाकर अपने बाल बच्चों और सग-सम्बन्धियोंसे मिल जाय । मूर्खदयस पहल हो हम यहाँ हाजिर हो जायेंगे ।

व्याध खिलखिलाकर हँस पड़ा । आला—'क्या तुम मुम बुद्ध समझते हो ? क्या मैं जिस तरह अपने हाथ आय

गिकारका छाड़ हूँ ? मर जाय-बच्चे तो सुधर भूखा तड़प रहे हैं ।

हम भा तेरी तरह बाल-बच्चोंका ही खयाल करके अितनी छुट्टी चाह रहे हैं । मेक बार आजमाकर ता देख कि तन अपन बचनका पालन करते हैं या नहीं ।

व्याधक मनमें भट्ठा आर कौनूब जाग खुठा । ठीक मूर्खद्वयसे पहल सोट आनेकी ताकीद करक भूमने पून हरिणा का घर जाने दिया और खुद बेलक पत्ताकी सोइता हुमा रात भर जागता रहा । थढ़ाबान् व्याधके हाथों अपने छिरपर पडे बिम्बनत्रोसे महादबजो मतुष्ट हुअे ।

ठीक सुनोन्वका समय हुआ और हरिणोंका भव बडा दल बहो भा पहुँचा ।

हरिण घर गय बाल-बच्चामे मिल अपने सींगोंमे अक-दूसरेको जुबलाया मन्हें बच्चाका प्रेमम चाटा मुन्हें व्याधकी कहानी कह मुनाभी और बिदा मांगी ।

'दुष्ट व्याधक साथ बचन-पालन कैमा पठ प्रति पाट्य कर्यान् । पैरोंमे जितना क्षार हा भुतना सब ओर लगाकर यहाँमे धूपचाप भाग जाओ ।' असा गप्पाह देनेवाला भुनमे कामा न निरसा । भग-सम्बन्धियान कहा—'घरों हम भी साथ चलने हैं । स्वेच्छासे मृत्यु भवोकारकरनेपर मौन मिलता है । आपक अग्रुव बाल-बच्चों दगबर हम पुनीन होंग ।

बाल-बच्चे साथ हो लिये । माना गव व्याधकी हिंमनाकी परोषा करने ही निबल हा ।

मूर्खद्वयमे पहल ही मारा दल वहाँ भा पहुँचा । रातबाल हरिण भाये बड़े और बोल्—'तो भाभी, हम बघके लिये तैयार हैं । हमर हरिण भा बोल अउटे—'हमें भी मार दया ! अगर हम मारनेमे तुम्हारे बाल-बच्चोंकी मृत्यु गान्त दानी है तो भण्डा हो है । व्याधकी हिंसावसि मज हा पड़ी । सारे दिनका धूपचाप

से उसकी जिसकृति अस्तमोक हुआ थी। तिसपर जिस प्रतिष्ठा-मालक हरिणोंका बर्मावरण देकर वह दंग रह गया उसके हृदयमें नया प्रकाश फैला। उसे प्रेम-शौर्यकी बीज मिली। वह पेड़से उतरा और हरिणोंकी शरण गया। वो पैर बाड़ेने पारपैरबाड़े पशुओंके पैर छुड़े। आकाशसे खेत पुष्प की वृष्टि हुमी। कौलाससे जेक जडा विमान उतर आया व्याध और हरिण उसमें बैठे और कल्याणकारिणी शिवरात्रि का महात्म्य गाते हुये शिवलोक सिधारे। आज भी वे दिव्य रूपमें चमकते हैं।^१

महाशिवरात्रिका दिन मानो जिन धर्मनिष्ठ सत्यवादी हरिणोंने स्मरणका ही दिन है।^२

मार्च, १९२२

१ भुवनेश्वर और व्याध।

२ जेकारात्री अष्टमी चतुर्थी और शिवरात्रि ये सब हिन्दू नहीं बने हुये मानेवाले त्योहार हैं। शैवधर्मोंने जेकारात्रीको सबके लिये लोकप्रिय बना दिया है। भगवतके भुवातक विनायकी और संकष्टा चतुर्थीका व्रत रखते हैं। देवीके भुवातक अष्टमीका व्रत रखते हैं। शिवरात्रि पुर महीने कृष्णपक्षकी चतुर्विंशतीके दिन माने हैं। शैव लोग शिवरात्रिका व्रत रखते हैं। जिस तरह जेकारात्रिओंके ध्यापाठ और कालिकी जेकारात्रियाँ महा-जेकारात्रियाँ हैं उसी तरह माघ महीनेकी शिवरात्रि महाशिवरात्रि है।

प्रत्येक मासके प्रत्येक त्योहारका अपना महात्म्य और भुवनी अपनी जेक कथा होती है। इनमेंसे महाशिवरात्रिकी कथा ऊपर की पंजी है।

कहानीके अति पुरातन श्रोत्रकी ओर ओर-कथाओंका संग्रह करन बात संशोधकोंका ध्यान जाना चाहिये।

६

गुलामोंका त्योहार

प्रत्येक त्योहारमें कुछ-न कुछ ग्रहण करने योग्य अवश्य होता है। लेकिन क्या आजकलकी होलीसे भी कुछ शिक्षा मिल सकती है ? पिछले बीस-पच्चीस बरसोंमें यह त्योहार जिस ढंगसे मनाया गया है, उसे देखते हुए तो जिसका विषयमें किसी तरहका आस्था अल्पन नहीं हो सकता। न जिसका प्राचीन विशिष्ट और न पौराणिक कथाओं ही जिस त्योहार पर कोजी अच्छा प्रकाश डालती है। फिर भी यह तो स्वीकार करना ही चाहिये कि हाली अब प्राचीनतम त्योहार है। जाड़ेके समाप्त होनेपर अब अबरदस्त होली जलाकर आनन्द-स्वयं मनानेका रिवाज हरसक दशमें और हरसक जमानेमें मौजूद रहा है। जिस आस्थामें राग सयमकी रागम डोला छोड़कर स्वच्छन्दताका बोझ आस्वाद लेना चाहते हैं।

हिन्दुओंमें अनेक मनुष्योंकी ही जाति नहीं होती, बल्कि बैरागी, पग-पक्षियों और त्योहारोंकी भी अपनी जातियाँ होती हैं। स्वर्गके अप्टावसु जातिके वीर्य हैं माग और कबूतर शास्त्र होते हैं और सोना वनिमा माना जाता है। जिस तरह हालीका त्योहार दुर्गोंका त्योहार है। क्या किसीलिये किसी जमानेके बिगड़े हुए दुर्गों द्वारा होलीका यह कार्यक्रम बनाया गया था और उनके हठोंको कायम रखनेके लिये दूसरे वर्गों ने इसे स्वीकार कर लिया था ? पुराणोंमें एक नियम है कि होलीके दिन भस्मोंको छूना चाहिये। भला जिसका क्या भूरेस्य रहा होगा ? जिस राग संस्कारी अर्थात् सयमी और पूरा स्वच्छन्दी हैं, क्या किसी विचारसे होलीमें मितनी स्वच्छन्मा रखी गयी है। होलीक दिन राजा-प्रजा एक होकर एक-दूसरे पर रंग अड़ाते हैं। क्या जिसका आशय यह है कि सासमें कम-से-कम चार-पाँच दिन तो सब लोग समानताके सिद्धान्त

शोभा दे। अगर बसन्तोत्सव मनाना है, तो समाजमें नया जीवन पैदा करके यह त्योहार मनाना चाहिये। अगर काम दहन करना है तो ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके पवित्र बनना चाहिये। यदि होस्तिकात्सव गुस्साभोंके लिये एकमात्र सात्वता का सामन हो, तो स्वराज्यकी खातिर उसे सुरन्त ही मिटा देना चाहिये। अगर मापाके मण्डारमेंसे यात्रियोंकी पूजा हो जाय तो उसके लिये शाक करनेकी कोशिश जरूरत नहीं। होलोंके दिनोंमें शहरों और गांवोंकी सफाई करनेमें हम अपना समय बिता सकते हैं। सड़के कसरत करने और बहादुरीके मरदाने खेस खेसनेमें तथा शराबके व्यसनमें पड़े हुअे लोगोंके मुहत्त्वोंमें जाकर उन्हें शराबखोरी छोड़ देनेका व्यक्तिगत उपदेश देनेमें जिस दिनका उपयोग कर सकते हैं। स्त्रियाँ स्वदेष्टीके गीत गा-गाकर जादीका प्रचार कर सकती हैं।

प्रत्येक त्योहारका अपना एक स्वराज्य-संस्करण अवश्य होना चाहिये, क्योंकि स्वराज्यका जय है आत्म-शुद्धि और नवजीवन।

